संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

वर्ष : ११
अप्रैल २००१

२००वाँ अंक
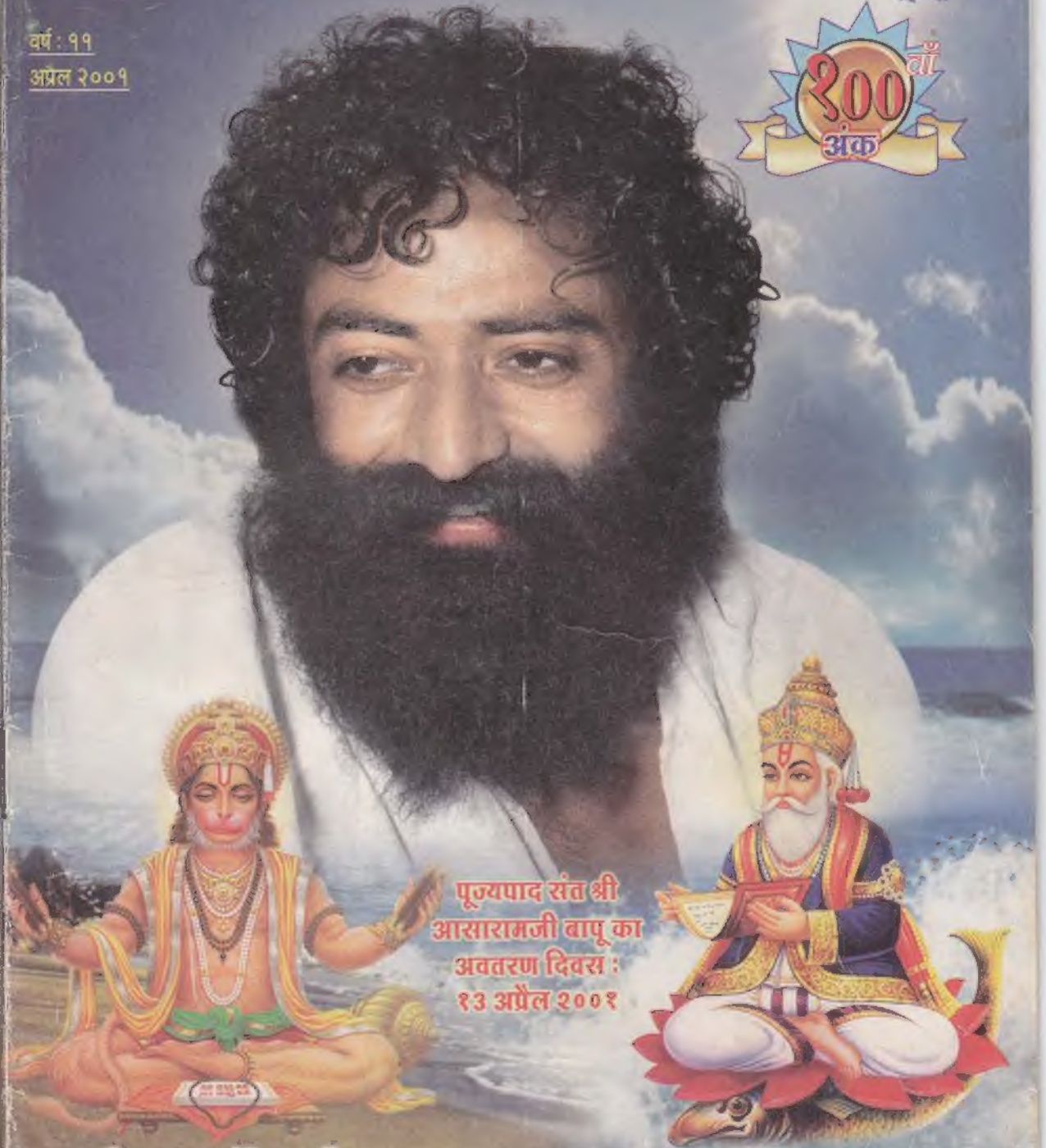
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू का अवतरण दिवस : १३ अप्रैल २००१

श्री हनुमान जयंति : ८ अप्रैल

भगवान् झूलेलाल अवतरण : २७ मार्च

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : ११
अंक : १००
९ अप्रैल २००१

सम्पादक : क. रा. पटेल
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-
नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)
विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

१०० वें अंक में 'ऋषि प्रसाद' का गौरवपूर्ण प्रवेश

१९९० की गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका का प्रथम अंक केवल ८००० प्रतियों के साथ गुजराती भाषा में प्रकाशित हुआ । तब किसीको स्वप्न में भी ख्याल नहीं होगा कि १०० वें अंक में प्रवेश के समय यह 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका गुजराती भाषा के अलावा हिन्दी, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में भी विभूषित होकर पंद्रह लाख की सदस्य संख्या का गगनगामी लक्ष्य सिद्ध कर रही होगी।

उस समय पूज्यश्री ने 'ऋषि प्रसाद' के प्रकाशन एवं वितरण में संलग्न साधक-परिवार के लिए आशीर्वचन कहे थे कि : ''समाज सेवा को ही ईश्वर सेवा का आदर्श बनाकर समाज में ध्यान, भक्ति और योग के संस्कार-सिंचन हेतु, भावशुद्धि और चित्त की एकाग्रता के द्वारा योगसामर्थ्य और आत्मा-परमात्मा के ज्ञान में स्थिति करने के संस्कार-सिंचन हेतु सेवाभावी साधक बनकर समय देना, स्वेच्छा से तैयार होकर निःस्वार्थ भाव से 'ऋषि प्रसाद' जैसी उत्तम कोटि की पत्रिका को निरंतर चलाने की जिम्मेदारी उठाना यह कोई सर्वसाधारण व्यक्तियों का काम नहीं है । इसमें चाहिये त्याग, साधना, निःस्वार्थ सेवा और अपने आध्यात्मिक अनुभव की पूँजीवाले साधकों के वृंद, जो निष्ठावान् हों, जिनको नाम की चाह न हो; धन कमाने की दृष्टि रखे बिना निष्काम भाव से सेवा करके समाज का एवं अपना आध्यात्मिक उत्कर्ष साधने की जिनमें तत्परता हो ।''

छोटे-से-छोटा व्यक्ति हो या बड़ा प्रतिष्ठित पुरुष, हर स्तर के मानव की एक ही माँग है : सुख और शांति। 'ऋषि प्रसाद' ज्ञान की एक ऐसी दिव्य प्याऊ है, जहाँ प्रत्येक की प्यास बुझती है । 'ऋषि प्रसाद' ज्ञानगंगा का ऐसा अलौकिक संगम-स्थल है, जहाँ कोई भी यात्री, चाहे वह भक्तियोग का हो या राजयोग का, निष्काम कर्मयोग का हो या ज्ञानयोग का, इसमें स्नान करके चित्त की शांति प्राप्त किये बिना नहीं रहता ।

'ऋषि प्रसाद' पत्रिका सभी स्तर के और सभी क्षेत्र के लोगों के लिए मन की प्रसन्नता और चित्त की शांति की दात्री बन गयी है । १०० वें अंक तक की अपनी यात्रा में 'ऋषि प्रसाद' ने लाखों भग्न परिवारों में एकता स्थापित की है, करोड़ों के स्वास्थ्य सुधारे हैं, लाखों-लाखों का साधना-मार्ग प्रकाशित किया है । 'ऋषि प्रसाद' सबको ऊर्ध्वगामी बनने की प्रेरणा देती है ।

ऋषि-मुनियों के प्रसाद को घर बैठे ही पाने का सुअवसर प्राप्त होता है यह सौभाग्य की बात है । 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका अपनी भव्य सांस्कृतिक विरासत का दर्शन भी कराती है । त्यौहारों एवं उत्सवों की आध्यात्मिक समझ, ऋतु अनुसार आहार-विहारसंहिता, भारतीय युवा पीढ़ी को सदाचारी-संयमी बनानेवाली शौर्यगाथाएँ, हमारी संस्कृति की अमर विरासत, हमारे संतों के प्रेरणात्मक जीवनचरित्रों जैसी विविधतापूर्ण सामग्रियाँ परोसनेवाली यह 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका सच्चे अर्थ में हमारे आर्षद्रष्टा, तत्त्वज्ञानी महापुरुषों, ब्रह्मवेत्ता महात्माओं का अमृतमय 'प्रसाद' ही है और ऋषियों का यह 'प्रसाद' चखनेवाले सचमुच में बड़े भाग्यशाली हैं ।

सफलता के अनेक उन्नत शिखरों को सर कर लेनेवाली यह दिव्य पत्रिका अल्प काल में ही आध्यात्मिक जगत में सबसे ज्यादा प्रकाशित होनेवाली पत्रिका के नाम से अपनी एक अलग पहचान बना चुकी है। इसकी इस सफलता के मूल में है परम पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद और सेवाधारियों की निष्काम सेवा ।

ऋषि प्रसाद पत्रिका के १००वें अंक की गौरवमयी प्रवेशवेला में आप सभी पाठकगण एवं संन्निष्ठ सेवाधारी हार्दिक अभिनंदन स्वीकार करने की कृपा करें ।

- संपादक

जन्म कर्म च मे दिव्यम्...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गीता में भगवान् कहते हैं :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

'हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं- इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से मुझे जान लेता है, वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है ।' (गीता : ४.७)

भगवान् अपने जन्म और कर्म दिव्य क्यों बता रहे हैं ? इसलिए कि सुननेवालों के कर्म भी दिव्य हो जायें ।

भगवान् जो बताते हैं हम लोगों के मंगल के लिये ही बताते हैं । जैसे साधारण व्यक्ति का जन्म होता है कर्मबंधन से, वासना वेग से, दुःख-सुख की थप्पड़ें खाने के लिये- ऐसा भगवान् का जन्म नहीं होता । भगवान् एवं कारक पुरुषों का जन्म वासना के वेग से नहीं होता, करुणा-कृपा से होता है । परहित से भरे अंतःकरण से होता है ।

भगवान् का जन्म दिव्य है अर्थात् भगवान् देह को 'मैं' नहीं मानते और स्वयं को कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता नहीं मानते, कर्म के फल की इच्छा नहीं रखते । जैसे भगवान् अपने को देह नहीं मानते वैसे ही आप भी इस पंचभौतिक शरीर को 'मैं' न मानें तो आपका कर्म भी दिव्यता की खबर देगा । आप अपने को कर्मों का कर्त्ता न मानें, दूसरे को नीचा दिखाने के लिये कर्म न करें, कर्म में लापरवाही न रखें तो आपके कर्म दिव्य हो जायेंगे ।

जैसे, दिया जगमगाता है और प्रकाश देता है, ऐसे ही भगवान् का जन्म और कर्म हम लोगों को प्रकाश देता है । महापुरुषों के जन्म और कर्म हम लोगों के लिये प्रकाशदायी हैं ।

जन्म तो मेरा नहीं हुआ है शरीर का हुआ है और आपको भी याद दिलाता हूँ कि आप भी ऐसा जन्मदिन मनाना कि शरीर में होते हुए भी शरीर से न्यारे...

देह छता जेनी दशा वर्ते देहातीत ।
ते ज्ञानीनां चरणमां हो वंदन अगणित ॥

भगवान् की दिव्यता स्वतःसिद्ध है और हमें साधन से सिद्ध करनी पड़ती है, कर्मों से सिद्ध करनी पड़ती है । कर्म दिव्य कैसे बनायें ?

किसी व्यक्ति को नीचा दिखाने के लिये कर्म करते हैं, अहंकार-सजाने के लिये कर्म करते हैं, वासना-पूर्ति के लिये कर्म करते हैं तो कर्म बंधन रूप हो जाता है लेकिन भगवद्प्रीति के लिये, भगवद्आनंद उभारने के लिये, अपना असली सुख, आत्मप्रकाश जगमगाने के लिये जब कर्म किये जाते हैं तो कर्म दिव्य हो जाते हैं । फिर चाहे-गुरु आश्रम में शबरी भीलन की बुहारी हो या मीरा का मेवाड़ में कीर्तन... चाहे भर्तृहरि का तप हो या गोपीचंद का त्याग... उनके कर्म दिव्य हो गये ।

वेद में 'सेतुगान' आता है : 'अश्रद्धा की दीवार को श्रद्धा से तोड़ दें, असत्य की दीवार को सत्य से तोड़ दें, क्रोध की दीवार को अक्रोध से तोड़ दें और लोभ की दीवार को दान से तोड़ दें ।'

जीवात्मा को बंधन में डालनेवाली ये चार दीवारें हैं । इन चार दीवारों को तोड़कर हम अपने मुक्त ज्ञानस्वभाव में जग जायें । जैसे, दिया जगमग-जगमग प्रकाशता है ऐसे ही हम साक्षी, अमर आत्मस्वभाव में प्रकाशित हो जायें...

बड़े में बड़ा दुर्भाग्य है कर्म बंधन बढ़ाते जाना । कर्मों को कर्मों से काटने की कैंची या युक्ति सत्संग से ही मिलती है । इसीलिये राजे-महाराजे राजपाट छोड़कर महापुरुषों को खोजते थे,

सत्संग खोजते थे। सत्संग से कर्मों में दिव्यता आती है और कर्मों की दिव्यता आपके जन्म को भी सफल बना देती है।

भगवान् और साधारण व्यक्ति के जन्म में, कारक पुरुष और साधारण व्यक्ति के जन्म में फर्क है, लेकिन भगवान् ने सबको ऐसा अवसर दिया है कि अपने कर्मों को दिव्य बना सकें। जिसके कर्म दिव्य हो गये उसका जन्म का फल भी दिव्य हो जाता है। उसका दुबारा जन्म ही नहीं होगा तो फल दिव्य हो गया...

साधारण व्यक्ति कर्म करता है तो कर्म का कर्त्तापन मौजूद होता है लेकिन भगवान् कर्म करते हैं तो कर्त्तापन न होने के कारण भगवान् के उन कर्मों से नये कर्म नहीं बनते। भगवान् के भी नहीं बनते और भगवान् को जिन्होंने जान लिया उनके भी नहीं बनते। ये हो गयी दिव्यता...

साधारण जन्म और कर्म एवं दिव्य जन्म और कर्म में जो ठीक से फर्क जान लेता है और दृढ़ता से मान लेता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

भगवान् के दिव्य जन्म और कर्मों को जाने और लाभ उठायें। भगवान् परमात्मा हैं और हम उसके सनातन अंश आत्मा हैं।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

जो भगवान् का आत्म चैतन्य है, उसीसे अभिन्न हमारा चैतन्य है। जैसे, जिस विद्युत से राष्ट्रपति का पूजागृह जगमगा रहा है उसी विद्युत से गरीब-मोहताज का बाथरूम भी प्रकाशित हो रहा है। विद्युत-तत्त्व वही-का-वही है। काँच के महल में दिया जगमगा रहा है और मिट्टी की हाँड़ी में दिया जगमगा रहा है तो काँच के महल की चमक कुछ सुहावनी दिख रही है और मिट्टी की हाँड़ी के दिये की चमक नपी तुली है लेकिन स्वभाव दोनों का एक है। ऐसे ही तुम्हारे अंतःकरण में जो ज्ञानस्वरूप ईश्वर है, जिसका कभी जन्म हुआ ही नहीं और जिसकी कभी मौत होती ही नहीं है ऐसा तुम्हारा ज्ञानस्वरूप आत्मा और परमात्मा दोनों एक हैं।

मन तू ज्योति स्वरूप, अपना मूल पिछान।

अपने शरीर के जन्म को अपना जन्म न मानो, शरीर के बुढ़ापे को अपना बुढ़ापा मत मानो, शरीर की बीमारी को अपनी बीमारी मत मानो, शरीर की पीड़ा को अपनी पीड़ा मत मानो.... शरीर की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानोगे तो हो जायेगा दुःख और शरीर की पीड़ा को शरीर की पीड़ा मानोगे, ज्ञान से देखोगे तो हो जायेगी तपस्या !

'जेलर' होकर जेल में चक्कर लगाओगे तो वेतन भी मिलेगा और सलामी भी... लेकिन कैदी होकर जेल में धकेले गये तो बेइज्जती होगी। हैं तो दोनों जेल में। ऐसे ही आप शरीर में धकेले जाते हो तो हो जाती है कैद, लेकिन ज्ञान है और अपने ढंग से जीते हो, शरीर में होते हुए भी शरीर से पृथक होकर जीते हो तो हो जाते हो मुक्त...

शास्त्र, संत और भगवान् जिसके लिये मना करते हैं वह न करें तो आप अपने ज्ञान में आ जाते हैं, मुक्त हो जाते हैं लेकिन शास्त्र, संत और भगवान् जिसके लिये मना करते हैं वही करें तो आप हल्की योनियों में धकेल दिये जाते हैं, कैद हो जाते हैं। किसीको भी पकड़कर जेल में नहीं डाला जाता। कानूनी अपराध होता है, अपराध साबित होता है तभी कोई जेल में भेजता है। ऐसे ही प्रकृति के नियम तोड़ने से, ईश्वरीय नियम तोड़ने से, मनमाना करने से रजो-तमोगुणी स्वभाव बन जाता है।

भगवान् अपने जन्म-कर्म की दिव्यता बताते हुए कहते हैं कि आप भी अपने स्वभाव में दिव्यता लायें अपने कर्म में दिव्यता लायें। दिव्यता मतलब ? अपने स्वभाव में, अपने कर्म में ज्ञान का प्रकाश लायें। क्या करना क्या न करना ? क्या खाना क्या न खाना ? आदि का विवेक करते हुए अपने कर्मों को दिव्य बनाएँ तो आपका जन्म-फल भी दिव्य हो जायेगा फिर मोक्षफल मिल जायेगा। भगवान् की 'मैं' के साथ आपकी 'मैं' मिल जायेगी तो जैसे भगवान् का जन्म-कर्म दिव्य है वैसे ही आत्म परायण होकर आपके जन्म-कर्म भी दिव्य हो जायेंगे... अतः अपने जन्म-दिवस या किसी के जन्म-दिवस के अवसरों पर भगवान् के इन वचनों को विचारें और रहस्य समझें तथा परम रहस्यमय परमात्म सुख पा लें। ॐ शांति... ॐ.... ॐ...

आगे बढ़ो

[मंत्रदीक्षा-प्राप्त साधकों को संदेश]

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

तुम्हें मंत्रदीक्षा के साथ मार्गदर्शक सूचनाएँ भी मिल गयी हैं। अब आवश्यकता है केवल अभ्यास की। अभ्यास के बिना दीक्षा का पूरा लाभ नहीं मिल पाता। अब मार्ग मिल ही गया है ईश्वर की ओर जाने का, तो वीरतापूर्वक आगे बढ़ो। आत्म-साक्षात्कार का दृढ़ संकल्प करनेवाले का रास्ता कौन रोक सकता है ? तुमको अकेला पाकर ईश्वर तुम्हारा साथी, सखा एवं सर्वस्व बनेगा। ईश्वर के अस्तित्व का गहन अनुभव करने के लिये और सबको भूल जाना, यह अत्युत्तम नहीं है क्या ? प्रकृति स्वयं तुम्हारे समक्ष सत्य को प्रकट करेगी।

इस प्रकार हर चीज तुम्हारे लिये आध्यात्मिक बन जायेगी। घास का एक तिनका भी आत्मा का उपदेश करने लगेगा। परमात्मा कहते हैं : तुम जब सब छोड़कर मेरे मार्ग पर चलोगे तो याद रखो : मेरा प्रेम और बुद्धियोग हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगे।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।

तुम परमात्मा के जितने नजदीक आओगे, उतनी ही अधिक अन्तर्दृष्टि तुम्हें प्राप्त होगी। पूरे अस्तित्व के साथ तुम अपना तादात्म्य महसूस करोगे। आज से तुम अपने को जीवरूप से मृतक मान लो। अपने दिल की डायरी में लिखकर रखो कि कभी-न-कभी कैसे भी करके अपरिच्छिन्न आत्मदेव के आगे तुम्हें अपने परिच्छिन्न व्यक्तित्व का बलिदान देना ही होगा, देहाध्यास को छोड़ना ही पड़ेगा। तुम इसके लिये उत्साहित होगे तो मार्ग जल्दी कट जायेगा लेकिन यदि उत्साहहीन होकर चलोगे तो मार्ग लंबा हो जायेगा।

तुममें यदि उत्सुकता, आकांक्षा हो तो समय का उचित उपयोग करो। प्रत्येक प्रसंग का लाभ उठाओ। यदि प्रयास करो तो 'तुम जैसे हो और जैसा होना चाहते हो' इन दोनों के बीच का फासला एक ही छलाँग में पार कर सकते हो। अतः जल्दी करो। जैसे, शेर अपने शिकार पर कूद पड़ता है, वैसे ही तुम अपने लक्ष्य पर जम जाओ। अपने मर्त्य शरीर पर दया न करो, तभी तुममें अमर आत्मा का प्रकाश आलोकित हो उठेगा।

दुःखों पर ध्यान मत दो। विविधता का क्या काम है ? जब विश्वात्मा स्वयं प्रकट हो रहा है तब विविधता की चाह क्यों कर रहे हो ? विविधताएँ केवल शारीरिक हैं। उन पर कतई ध्यान मत दो। केवल एक अंतर्यामी से संबंध रखो। अनेक से नाता तोड़ दो। **एक साधे सब सधे सब साधे सब जाय।**

वैराग्य की शक्ति जुटाओ और चिन्ता मत करो। तुम ही तुम्हारे मित्र भी हो और शत्रु भी।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः। (गीता)

एक ही झटके से पूर्व के संस्कारों के बंधन काट डालो। एक बार दृढ़ निश्चय का उदय हो गया तो कार्य सरल बन जायेगा। तुम्हारे चिन्मय वपु के निर्माण और उसके पोषण में परमात्मा की करुणा और आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं। विश्वास रखो। विश्वास में ही कल्याण निहित है।

दूसरों से मान-सम्मान का क्या काम है ? तुम्हारे लिये वे सब निरर्थक हैं। याद रखो : जब तक तुम अन्य लोगों से मानप्राप्ति की अपेक्षा रखते हो, तब तक समझ लो कि मिथ्याभिमान ने तुम्हारे भीतर अड्डा जमा रखा है। अपनी दृष्टि में ही पवित्र बनो। अन्य लोग क्या कहते हैं उसकी तनिक भी परवाह मत करो। अपनी उच्चतम प्रकृति का अनुसरण करो। जो जागता है उसको अपना अनुभव भी उपदेश दे सकता है। व्यर्थ की बातों में समय व्यतीत मत करो।

सब प्रकार से अपना ही आश्रय लो। मार्गदर्शन के लिये अपने भीतर ही अंतर्यामी परमात्मा की ओर दृष्टि डालो। तुम्हारे अभ्यास की प्रामाणिकता तुमको दृढ़ बना देगी। वह दृढ़ता तुमको लक्ष्य तक पहुँचा देगी। तुम्हारी सच्चाई तुमको सब भयों से मुक्त करेगी। तुमको परमात्मा के आशीर्वाद... सदा सदा के लिये आशीर्वाद हैं।

ठीक अभ्यास करें

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

'हे पार्थ ! परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्त से निरंतर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।' (गीता : ८.८)

अभ्यास तो सब करते हैं लेकिन भगवान कहते हैं कि आप अपने अभ्यास को योग बना लो। ऐसा अभ्यास करो कि निरंतर उस परमेश्वर का ही चिन्तन हो।

जो जिसका चिन्तन करता है उसके गुण सहज ही उसमें आने लगते हैं। ईश्वर के गुण जीव में छुपे हुए ही हैं लेकिन फालतू चिन्तन से जो परतें चढ़ गयी हैं उन परतों को हटाने के लिए ईश्वर के चिन्तन की जरूरत पड़ती है। व्यर्थ का चिन्तन हटाने के लिए सार्थक चिन्तन करना पड़ता है। व्यर्थ का चिन्तन हट जाये तो सार्थक चिन्तन करने की जरूरत नहीं पड़ती, स्वतः होने लगता है। व्यर्थ का अभ्यास मिट जाये तो सार्थक अभ्यास करना नहीं पड़ता, सार्थक स्वभाव प्रगट हो जाता है।

जैसे, पार्वतीजी जाना चाहती थीं अपने पिता के यज्ञ में और शिवजी ने कहा कि यह उचित नहीं है। लेकिन पार्वतीजी को ऐसा था कि : 'माँ एवं बहनों से जरा मिल लूँगी।' वे चली गयीं तो शिवजी ने क्या किया ? व्यर्थ का चिन्तन नहीं किया वरन्‌...

संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥
(श्रीरामचरित० बालकाण्ड : ५७.८)

शिवजी ने ऐसा नहीं कहा कि : 'मैं तलाक दे दूँगा... दूसरी ले आऊँगा...' नहीं। शिवजी अपने स्वरूप में स्थित हो गये, उनकी अखंड समाधि लग गयी।

ऐसे ही आपका भी वही सहज स्वरूप है जो शिवजी का है लेकिन अभ्यासयोग न होने के कारण मन इधर-उधर की फालतू बातों में जाता है और दुःख बनाता है। इसीलिये भगवान कहते हैं :

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

अभ्यास तो सब करते हैं। जैसे, रोटी बनाने, पढ़ाई करने, ड्राइविंग करने, मिट्टी का काम करने का अभ्यास... लेकिन ये अभ्यास प्रकृतिजन्य चीजों में उलझानेवाले होते हैं। अभ्यास तो ऐसा करो कि उस परमात्मा से, प्रकृति के स्वामी से आपका योग हो जाये। वास्तव में तो उसके साथ स्वतः योग सदा ही है। गलत अभ्यास के कारण उससे वियोग हो रहा है। उस वियोग के संस्कार हट जायें तो ईश्वर के साथ आपका नित्य संयोग हो जाये। फिर आपका चित्त कहीं और जायेगा ही नहीं।

फिर दिखेगी तो गाय लेकिन गहराई में चिंतन होगा कि : 'गाय के अंदर देखने एवं दूध बनाने की सत्ता भी परमात्मा की है...' दिखेगा कोई व्यक्ति लेकिन उस व्यक्ति की गहराई में वही परमात्मा है... दिखेगी तो रोटी और मक्खन लेकिन वह भी तो तू ही है... कैसे ? रोटी और मक्खन इसी धरती से उत्पन्न हुए। रोटी गेहूँ से बनी और गेहूँ धरती से उत्पन्न हुए। धरती का अधिष्ठान जल, जल का तेज, तेज का वायु, वायु का आकाश और आकाश का अधिष्ठान प्रकृति है। प्रकृति का भी अधिष्ठान है परमात्मा अर्थात् सर्वाधार परमात्मा से ही सब उत्पन्न हुआ है।

नहीं तो यूँ कह दो कि धरती, जल, हवा, प्रकाश और किसान की काम करने की चेतना यह सब भगवान का है। इससे गेहूँ उत्पन्न हुए एवं गेहूँ से रोटी बनी तो वह भी तो भगवन्मय है। 'तेरी सत्ता से ही सब दिखता है... तेरी सत्ता से ही खाया-पिया जाता है... तू ही तू है। प्रभु ! तेरी जय हो...'

सब कुछ तू ही है लेकिन बीच में उल्टा अभ्यास

हो गया है 'मैं' का। देखती हैं आँखें लेकिन अहं बोलता है कि 'मैं देखता हूँ...' सोचता है मन किन्तु अहं बोलता है कि 'मैं सोचता हूँ...' निर्णय करती है बुद्धि लेकिन अहं बोलता है कि 'मेरा निर्णय है...' इस उल्टे अभ्यास को निकालने के लिये सुलटा अभ्यास करना पड़ता है।

जैसे, केले के वृक्ष का तना बड़ा ठोस दिखता है लेकिन पत्तियाँ हटाओ तो कुछ भी नहीं... केवल परतें इकट्ठी हो गयी हैं तो ठोस लगता है। प्याज देखने में बड़ा ठोस लगता है, छिलके हटाओ तो कुछ नहीं। ऐसे ही इस अहं की परतें हटाते जाओ तो 'अहं' जैसी कोई चीज ही नहीं है। केवल वही परमात्मा है लेकिन बेवकूफी से अहं ने परेशान कर रखा है।

नुक्ते की हेरफेर से खुदा से जुदा हुआ।
नुक्ता अगर ऊपर रखो तो जुदा से खुदा हुआ॥

जहाँ सचमुच में 'मैं' है वहाँ मन जाता नहीं और जो 'यह' है उसे 'मैं' मान बैठे हैं... यही उल्टा अभ्यास पड़ गया है। 'यह सिर... यह मुँह... यह हाथ... यह पैर... यह पेट...' कहते तो हैं लेकिन किडनी खराब हुई तो कहेंगे : 'मैं बीमार हूँ...' फिर आयुर्वेदिक रीति से ठीक हुई और कोई पूछे कि : 'कैसे हो ?' ...तो जवाब मिलेगा : 'मैं ठीक हूँ।'

वास्तव में आप बीमार भी नहीं होते और ठीक भी नहीं होते। बीमार होता है शरीर... ठीक होता है शरीर... मरता है शरीर... आप तो ज्यों-के-त्यों हैं। लेकिन आप अपने असली 'मैं' को नहीं जानते बल्कि इस शरीर को 'मैं' मानते हैं इसीलिए दुःखी, चिंतित और परेशान होते रहते हैं। अगर शरीर को 'मैं' न मानें एवं वास्तविक 'मैं' का ज्ञान हो जाय तो सारी खटपटें सदा के लिये दूर हो जायँ।

शास्त्र में दो प्रकार की युक्तियाँ आती हैं : विधेयात्मक एवं निषेधात्मक। संतों-महापुरुषों का यह अनुभव है कि विधेयात्मक की अपेक्षा निषेधात्मक युक्ति ज्यादा कारगर सिद्ध होती है। विधेयात्मक युक्ति से इतना शीघ्र तत्त्वज्ञान नहीं होता, जितना निषेधात्मक युक्ति से होता है।

जैसे, **अहं ब्रह्मास्मि।** 'मैं ब्रह्म हूँ... मैं चेतन्य हूँ... मैं शुद्ध-बुद्ध-सच्चिदानंद हूँ... मैं अमर हूँ... मैं मुक्त हूँ...' बात तो बिल्कुल सत्य है लेकिन साधारण आदमी ऐसा सोचे एवं सावधान न रहे, संयमी न रहे तो उसके लिये खतरा पैदा हो सकता है। 'मैं ब्रह्म हूँ...' इसमें 'मैं' पर जोर है कि 'ब्रह्म' पर जोर है यह देखना पड़ता है। आदमी सावधान न रहे तो 'अहं ब्रह्मास्मि' करके उसमें अहंकार भी आ जाता है अथवा वासनाओं की पूर्ति के लिए खुलेआम रास्ता भी बना लेता है।

इसकी अपेक्षा तो निषेधात्मक विधि सरल है कि : 'यह शरीर मैं नहीं हूँ... मन मैं नहीं हूँ... बुद्धि मैं नहीं हूँ...' आदि-आदि।

'यह हाथ है।' ...तो जो 'यह' है वह 'मैं' नहीं हूँ। जो 'इदं' है वह 'अहं' नहीं हो सकता और जो वास्तव में 'अहं' है वह कभी मिट नहीं सकता। 'यह' तो बदलता रहता है लेकिन 'मैं' वही-का-वही रहता है। 'यह' मर जाता है लेकिन 'मैं' नहीं मरता। वास्तविक अहं अमर आत्मा है... आत्मा-परमात्मा का सनातन संबंध है। ॐ आनंद... ॐ माधुर्य... ॐ शांति...

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका में किसी बगीचे में बैठे हुए थे। संन्यासी वेश था उनका... नंगे पैर, मुंडन किया हुआ सिर और काषाय वस्त्र। उन लोगों ने पहले कभी किसी भारतीय संन्यासी को इस प्रकार देखा नहीं होगा। कुछ लोग यह कहकर उनकी मखौल उड़ाने लगे : "होयऽऽऽ... होयऽऽऽ... रेड मंकी..."

स्वामी रामतीर्थ यह सुन नाचने लगे और वे भी कहने लगे : "होयऽऽऽ... होयऽऽऽ... रेड मंकी..."

स्वामी रामतीर्थ को भी ऐसा कहते देख उन लोगों ने कहा : "हम तुम्हीं को बोल रहे हैं।"

स्वामी रामतीर्थ : "हाँ हाँ... मैं भी इसी को बोल रहा हूँ।"

उनको तो यह और पागलपन लगा। बोले :

"अरे ! 'इसको बोल रहा हूँ' का क्या मतलब ? यही तो तुम हो।"

स्वामी रामतीर्थ : "नहीं, मैं 'यह' नहीं हूँ। यह तो 'रेड मंकी' है। मैं तो ब्रह्म हूँ। ॐ... ॐ... ॐ..."

लोगों को आश्चर्य हुआ कि कैसा विचित्र व्यक्ति है ! उन्होंने और चिढ़ाया लेकिन स्वामी

रामतीर्थ बड़े प्रसन्न... इतने में कोई सज्जन वहाँ पहुँचे । उन्होंने देखा कि : 'ये तो भारत के कोई पहुँचे हुए महापुरुष लगते हैं । जीसस के लिए तो केवल सुना है : 'King of God... King of Kings...' लेकिन ये महापुरुष तो सचमुच में राजाओं के राजा लगते हैं । शरीर में होते हुए भी अपने को शरीर से परे मानते हैं इसलिये इन पर अपमान का कोई असर नहीं हो रहा है ।'

उन्होंने स्वामी रामतीर्थ को प्रणाम किया और जहाँ उन्हें जाना था वहाँ पहुँचा दिया ।

जिस घर में स्वामी रामतीर्थ ठहरे हुए थे उस घर के लोगों ने आज स्वामीजी को ज्यादा प्रसन्न देखकर पूछा :

''स्वामीजी ! आज आप ज्यादा प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं... क्या बात है ?''

स्वामी रामतीर्थ : ''आज हमने 'इसका' मजा लिया । इस 'रेड मंकी' को देखकर लोग भी खुश हो रहे थे और मैं भी खुश हो रहा था ।''

''कहाँ है रेड मंकी ?''

''यह है रेड मंकी...'' अपने शरीर की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा ।

''यह तो आप हैं ।''

''नहीं नहीं । यह तो शरीर है और हर सात साल में इसकी हड्डियों तक के सब कण बदल जाते हैं । लोग इसका मजाक उड़ा रहे थे तो हम भी मजा ले रहे थे ।''

तब उनको महसूस हुआ कि अपने को शरीर से पृथक् मानकर ही स्वामीजी ऐसा कह रहे हैं ।

'यह' को 'मैं-मेरा' मानना - यही सारे दुःखों, पापों, अपराधों एवं राग-द्वेष की जड़ है। 'यह' शरीर है, मन है, बुद्धि है। 'शरीर बदलता है और उसे देखनेवाला मैं हूँ... मन बदलता है और उसे देखनेवाला मैं हूँ... बुद्धि बदलती है और उसे देखनेवाला मैं हूँ...'

नानकजी ने ठीक ही कहा है :

मन ! तू ज्योतिस्वरूप, अपना मूल पिछान।

मनुष्य 'यह' को 'मैं-मेरा' मानकर अपने में योग्यताएँ देखता है तो अहंकार आता है और दुर्गुण देखता है तो विषाद होता है । 'कुछ करके, कुछ छोड़कर या कुछ पाकर बढ़िया बनूँ...' ये सब फुरने 'यह' को 'मैं' मानने से ही उपजते हैं । 'यह' को 'मैं-मेरा' मानने से गलतियाँ भी ज्यादा होती हैं और दुःख भी बढ़ता है ।

'यह' को 'यह' मानें और 'मैं' को 'मैं' मानें तो कोई दुःख नहीं होता । इस अभ्यास से सारे दुर्गुण निकलने लगते हैं, सद्गुण आने लगते हैं और आध्यात्मिक बल बढ़ने लगता है ।

जैसे, सूरज के उदय होते ही वातावरण में जो होना चाहिए वह होने लगता है । पृथ्वी से अंधकार विदा हो जाता है, हानिकारक जीवाणु नष्ट होने लगते हैं, पेड़-पौधों का पोषण होने लगता है और ऑक्सिजन बढ़ने लगता है आदि-आदि । इसके लिए सूरज को कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती । ऐसे ही आप 'यह' को 'यह' और 'मैं' को 'मैं' जान लेंगे तो आपसे जो होना चाहिए वह होने लगेगा और जो नहीं होना चाहिए वह मिटने लगेगा । इसके लिए आपको कोई मेहनत नहीं करनी पड़ेगी । सब स्वाभाविक ही होने लगेगा ।

अतः हिम्मत करके अपने सत्यस्वरूप को पाने में लग जायें । मन-बुद्धि व व्यवहार में जितनी सच्चाई होगी उतना ही सत्यस्वरूप परमात्मा अपने आत्मबल में प्रगट होने लगेगा । परमात्म-आनंद व नित्य नवीन रस अपने सहज स्वरूप को संभालते ही प्राप्त होने लगेगा । यह बहुत ऊँची स्थिति है । इसके लिए सच्चाई से अवश्य लगना चाहिए ।

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी ।

ज्ञानी का पूजन

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

दो प्रकार के मनुष्य होते हैं : (१) आस्तिक और (२) नास्तिक।

आस्तिक एक की शरण लेता है जबकि नास्तिक को हजारों की शरण लेनी पड़ती है। नास्तिक हजार-हजार जगह खुशामद करता है, फिर भी उसका बेड़ा गर्क हो जाता है जबकि आस्तिक केवल एक भगवान की शरण लेता है और उसका बेड़ा पार हो जाता है।

नास्तिक भी दो प्रकार के होते हैं : (१) नकारात्मक और (२) उदासीन।

(१) पहले प्रकार के मनुष्य घोर नास्तिक होते हैं। वे मानते हैं कि ईश्वर जैसी चीज कुछ है ही नहीं। वे संतों एवं साधु पुरुषों की निंदा भी करते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि : 'यह शरीर मैं हूँ और मैं ही सब कुछ हूँ...' ऐसे मनुष्य कालांतर में वृक्ष, पशु, पक्षी आदि योनियों को प्राप्त होते हैं।

(२) दूसरे होते हैं उदासीन या अर्द्ध नास्तिक जिन्हें ईश्वर की कुछ पड़ी ही नहीं होती कि : 'ईश्वर का अस्तित्व हो या न हो, अपने को क्या ? अपने को तो नौकरी-धंधा करके कमाना-खाना है और जीना है।' ऐसे लोगों को समय समय पर सुख-दुःख की थप्पड़ें खानी पड़ती हैं।

आस्तिक मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं :

(१) एक ऐसे होते हैं जो ईश्वर एवं संतों को मानते हैं, भगवान की पूजा-अर्चना करते हैं ताकि जीवन में कोई विघ्न न आये, कोई दुःख-मुसीबत सहन न करनी पड़े। वे ईश्वर को तो स्वीकारते हैं लेकिन संसार के सुख की इच्छा करते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी संसार की गाड़ी ठीक से चलती रहे। ऐसे आस्तिकों की प्रीति संसार में होती है और आवश्यकता भगवान की पड़ती है। ऐसे भक्तों को बहुत समय बाद भगवद्प्राप्ति होती है।

(२) दूसरे आस्तिक ऐसे होते हैं जो संतों से लाभ उठा लेते हैं। वे भगवान को मानते हैं और 'भगवद्प्राप्ति के बिना जीवन व्यर्थ है' यह भी जानते हैं। ऐसे पुरुष संत-महापुरुषों का संग करते हैं, सत्शास्त्रों का पठन-मनन करते हैं, इसी जन्म में ईश्वरप्राप्ति का दृढ़ संकल्प करते हैं और ईश्वरीय शांति, ईश्वरीय आनंद पा लेते हैं।

कहते हैं कि मंदिर जाने एवं मूर्तिपूजा करने से एकतरफा पुण्यलाभ होता है किन्तु जिनको परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है, ऐसे महापुरुषों का पूजन करने से दोतरफा लाभ होता है। मूर्ति अपनी ओर से भक्त के लिए शुभ संकल्प नहीं करती बल्कि भक्त को उसकी भावना के अनुसार फल मिलता है। लेकिन आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष के पूजन-अर्चन में हमारी भावना तो काम करती ही है, साथ ही उनकी दृष्टि, उनके संकल्प एवं दिव्य परमाणुओं से भी हमारा शुभ संकल्प फलित होने लगता है।

अखा भगत कहते हैं :

सजीवाए निर्जीवाने घड्यो अने पछी कहे मने कंई दे ।
अखो तमने ई पूछे के तमारी एक फूटी के बे ?

''सजीव ने (मनुष्य ने) निर्जीव को (पत्थर की मूर्ति को) बनाया और फिर उसी से माँगने लगा कि : 'मुझे कुछ दो।' अखा भगत आपको यह पूछता है कि आपकी एक आँख फूट गई है कि दोनों ?''

मूर्तिपूजा करके जितना लाभ उठाया जा सकता है, उससे कईगुना लाभ ज्ञानी महापुरुष की पूजा करने से होता है।

ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर। ब्रह्मज्ञानी को ढूँढ़े महेश्वर॥

शंकरजी ढूँढ़ते रहते हैं कि : 'मुझे कहीं कोई ब्रह्मज्ञानी मिल जाये।' मूर्ति से जितना लाभ मिलता है, वह अपनी श्रद्धा से मिलता है। जितनी श्रद्धा

मूर्ति में होगी, उससे उतना ही लाभ होगा। मूर्ति स्वयं किसीके लिए लाभ का संकल्प नहीं करती।

जागृत महापुरुषों के हृदय में तो संकल्प होता है कि : 'चलो, इसका मंगल हो... कल्याण हो... यह और प्रसिद्ध हो... यशस्वी हो... तेजस्वी हो... बुद्धिमान् हो... ज्ञानवान् हो...' संत के हृदय में तो परहित की भावना होती है। इसीलिए मूर्तिपूजा की अपेक्षा ज्ञानी-महापुरुषों की पूजा श्रेष्ठ है। तीर्थ में जाने की अपेक्षा ज्ञानी-महापुरुषों के पास जाना श्रेष्ठ है।

तीर्थ में तो जितनी तीर्थत्व बुद्धि होगी, उतना ही फल मिलेगा जबकि ज्ञानी-महापुरुषों के पास तो आत्मतीर्थ का वातावरण होता है जहाँ गंगा भी आकर पवित्र होती हैं एवं तीर्थराज प्रयाग भी पवित्र होने को आते हैं। अतः तीर्थ में जाने की अपेक्षा आत्मज्ञानी महापुरुष के यहाँ जाना हजारगुना अच्छा है।

चांद्रायण व्रत अथवा दूसरे व्रत करने की अपेक्षा ज्ञानी का प्रसाद ग्रहण करना श्रेष्ठ है क्योंकि ज्ञानी की पूजा में श्रद्धालु की श्रद्धा और ज्ञानी-महापुरुष का संकल्प दोनों मिल जाते हैं। इससे उसमें द्विगुण बल आ जाता है। श्रीहरि बाबाजी महाराज कभी-कभी कहते थे कि यदि संसार में दो व्यक्तियों के मन सर्वथा मिल जायें तो वे विश्वविजयी हो जाएँगे।

दो मन एक हो जायें तो बल बढ़ जाता है। शुंभ-निशुंभ दैत्य थे। उन दोनों के मन मिल गये तो उन्होंने देवताओं की नाक में दम कर दिया। दो समकक्ष मन मिल जायें तो कार्य बन जाता है।

अतः श्रुति ज्ञानी की विभूति का वर्णन करके उसकी पूजा का विधान करती है।

जिसकी संसारी कामना है वह भी आत्मज्ञानी संत का यजन-पूजन करे एवं जो निष्कामी है वह भी निष्कामता के फल को पाने के लिए, निष्कामता में दृढ़ होने के लिए ज्ञानी का पूजन करे। जिसको ज्ञान चाहिए वह भी ज्ञानी का आदर करे और जिसको भोग चाहिए वह भी ज्ञानी का पूजन करे।

ज्ञानी-महापुरुषों के संग की महिमा का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण 'श्रीमद्भागवत' में कहते हैं :

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥

'हे उद्धवजी ! अन्य सब संगों को दूर करनेवाला सत्संग जैसे मुझे वश में करता है, वैसे योग, सांख्य, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्टापूर्त (अग्निहोत्रादि इष्ट, कूप-तड़ागादि पूर्त), दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, छन्द, तीर्थ, नियम और यम - ये सब साधन वश में नहीं करते।'

(श्रीमद्भागवत : ११.१२.१,२)

जन्मदिवस के शुभ अवसर पर...

गुरु-जन्मदिवस के दिव्य अवसर पर। अपने भाग्य को चमकाएँ॥
सद्गुरुजी के दर्शन पाकर । जीवन सफल बनाएँ॥
अनेक जन्मों के पुण्यों से । श्री सद्गुरुजी प्राप्त हुए॥
उनके मार्गदर्शन से ही तो । हम सब कृतार्थ हुए॥
जन्म-जन्म के भटके जीव का। कर दिया सद्गुरु ने कल्याण॥
जितनी भी करो उतनी ही कम। श्री सद्गुरु महिमा का बखान॥
जन्म-मरण के चक्कर से। गुरुवर ने हमको मुक्त किया॥
आत्म-प्रकाश हृदय में भरकर। प्रभु-प्रेम से युक्त किया॥
हम अज्ञानी बालक थे । हम इन्द्रियों के वश में थे॥
परम सनेही संतकृपा से । अपने आत्मरस में तृप्त हुए॥
'हरि ॐ' की प्याली पिलाकर। कर दिया हमें भव से पार॥
आत्मज्ञान का विवेक जगाया। इनकी तो है महिमा अपार॥
वाणी मधुर बनाकर हमारा। मद मोह लोभ को छुड़ा दिया॥
हरिनाम की महिमा बताकर । प्रभुचरण से जोड़ दिया॥
व्याकुल आपके दरश को बापू ! जल्दी ही दर्शन देना॥
सद्गुरुजी को शत शत है नमन। प्रभुजी ! हमें भव से तारना॥
'नारायण हरि' से मन निर्मल। प्राणायाम से स्वस्थ शरीर॥
इस संदेश के हैं गुरु दाता । जो हैं इक मस्त फकीर॥
बड़े दयालु सद्गुरु अपने । करुणा के भंडार हैं॥
पूज्यश्री के श्रीचरणों में। हम सबका नमस्कार है !
परम सौभाग्य हमारा बापू ! करते हम सब वंदन हैं॥
जन्मदिवस के शुभ अवसर पर। हम सबका अभिनंदन है !

- मंजरी अग्रवाल, अंगुल (उड़ीसा).
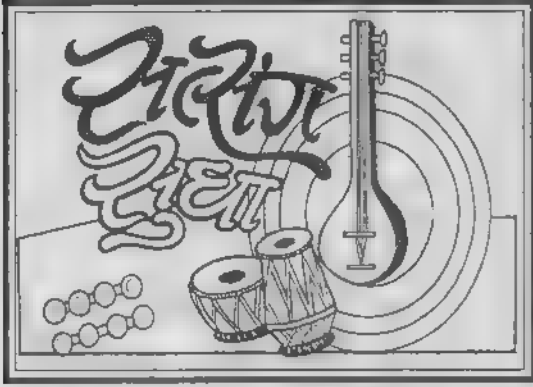
मन का प्रभाव तन पर

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

कुछ मनचले छात्रों ने आपस में तय किया कि आज मास्टर को स्कूल से वापस करना है। जब वे कक्ष में आये, तब एक ने कहा : ''सर ! आज आपकी आँखें थोड़ी अंदर धँस गयी हैं।''

दूसरे छात्र ने 'सर' की नाड़ी पकड़ी, फिर बोला : ''सर ! आपको रात को बुखार आया था क्या ? अभी भी शरीर थोड़ा गर्म है।''

सर : ''नहीं तो !''

तीसरा छात्र : ''सर ! आपको अपनी सेहत का कुछ पता नहीं है। आप काम में व्यस्त रहते हैं और अपने शरीर का बिल्कुल ख्याल नहीं रखते हैं। सचमुच ! आपको बुखार है।''

चौथा छात्र : ''वाकई सर ! आपको बुखार है।''

पाँचवाँ छात्र : ''सर ! यदि आप बुखार में भी काम करते रहेंगे तो हो सकता है ज्यादा बीमार पड़ जायें। अगर आपको न्यूमोनिया हो जायेगा तो ? सर ! कृपया, आराम करिए। आप थके हुए हैं और बुखार का असर भी है।''

छठवाँ छात्र : ''अभी दो महीने बाद परीक्षाएँ भी होनेवाली हैं। अगर आप जबरदस्ती पढ़ायेंगे तो हो सकता है परीक्षाओं के दिनों में आपको न्यूमोनिया हो जाये। क्षमा करें सर ! आप आराम करें।''

देखते-ही-देखते मास्टर का सिर दर्द से फटने लगा और पैर काँपने लगे। उनको बुखार आ गया। वे जल्दी-जल्दी घर पहुँचे एवं रजाई ओढ़कर सो गये।

...तो मानना पड़ेगा कि मन का असर तन पर पड़े बिना नहीं रहता। आपके दो शरीर होते हैं : एक अन्नमय और दूसरा मनोमय। मनोमय शरीर जैसा सोचता और निर्णय करता है, अन्नमय शरीर में वैसे ही परिवर्तन होने लगते हैं।

मन जितना सूक्ष्म होता है, शरीर पर उसका उतना ही गहरा प्रभाव पड़ता है। केवल अपने शरीर पर प्रभाव पड़ता है ऐसी बात नहीं है बल्कि दूसरों के शरीर पर भी आपके सूक्ष्म मन का प्रभाव पड़ सकता है। संकल्प में इतनी शक्ति होती है !

एक घटित घटना है :

एक लड़का भगवान शंकर का बड़ा भक्त था। नर्मदा किनारे रहता था एवं '**ॐ नमः शिवाय**' मंत्र का जप करता था। उसे सारा दिन शिवभक्ति करते देख उसके घरवाले परेशान रहते थे।

शिवरात्रि के दिन उसके बड़े भाई ने उसकी पिटाई की और उसे एक कमरे में बंद कर दिया। घर के लोग निश्चिन्त होकर सो गये कि : 'अब कैसे जा पायेगा मंदिर में ?'

...लेकिन भक्त को तो रात्रि-जागरण करना था। उसने शिवभक्ति न छोड़ी। वह बन्द कमरे मे ही शिवजी की मानसपूजा करते-करते इतना मग्न हो गया कि उसका शरीर मंदिर में पहुँच गया !

सुबह घर के लोगों ने खिड़की से देखा तो लड़का कमरे में नहीं है और बाहर से ताला लगा है ! उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ! जिस मंदिर में वह लड़का जाता था उसी मंदिर में जाकर उन लोगों ने देखा तो वह शिवजी को आलिंगन करके बैठा हुआ मिला। पूछा : ''तू यहाँ कैसे आया ?''

लड़के ने कहा : ''मुझे कुछ पता नहीं। शिवजी लाये होंगे तो आ गया।''

शिवजी उठाकर मंदिर में नहीं लाये होंगे। यह तो उसके तीव्र चिन्तन का प्रभाव था कि उसका तन भी शिवालय में पहुँच गया।

ऐसे ही दूसरी एक घटना है : बड़ौदा के आगे ताजपुरा है। ताजपुरा में मेरे मित्र संत नारायण स्वामी रहते हैं। उनके आश्रम का नाम है नारायण

धाम । जब नारायण धाम नहीं बना था और वे साधना करते थे तब वहाँ एक छोटा-सा मंदिर था। उस मंदिर का पुजारी रजनी कला स्नातक था। उसने मुझसे कहा :

''बापू ! बापू (नारायण स्वामी) का तो कुछ कहा नहीं जा सकता।''

मैंने पूछा : ''क्या हुआ ? जरा बताओ।''

पुजारी : ''मैं एक दिन पूजा वगैरह करके शटर को दो ताले लगाकर घर चला गया क्योंकि जंगल का मामला था और तब आश्रम इतना विकसित नहीं था। सुबह जब शटर खोला तो देखा कि मंदिर के अंदर बापू (नारायण स्वामी) शिवलिंग को आलिंगन करके बैठे हुए थे ! मैं तो यह देखकर चकित रह गया कि बापू मंदिर के अंदर कैसे ? मैंने तो अंदर एक बिल्वपत्र और फूल तक नहीं रखा था। फिर बापू को अंदर बंद करके कैसे चला गया, मुझे कुछ पता नहीं है।''

मैंने कहा : ''ऐसा नहीं होगा, कुछ राज़ होगा।''

पुजारी : ''कुछ राज़ ही है। मैं तो मंदिर की सफाई करने के बाद ताला लगाकर घर चला गया था।''

वे तो मेरे मित्र संत हैं। मैंने उनसे पूछा : ''यह सब कैसे हुआ था ? आप संकल्प करके शिवालय में पहुँचे थे कि आपने योग का उपयोग किया था ? आप ऋद्धि-सिद्धि के बल से वहाँ पहुँचे थे या भगवान शंकर स्वयं आपको पकड़कर अंदर डाल गये थे ? सच बताओ।''

नारायण स्वामी ने कहा : ''यह तो मुझे पता नहीं लेकिन प्रभु का ऐसा तीव्र चिन्तन हुआ कि मैं नहीं रहा। जब सुबह हुई और पुजारी ने मंदिर खोला तब मुझे भान हुआ कि : 'मैं इधर कैसे ?' फिर तो मैं 'प्रभु... ! प्रभु... !!' करके एक मील तक दौड़ता चला गया।''

...तो मानना पड़ेगा कि आपका मन जिसका तीव्रता से चिन्तन करता है वहीं आपका तन भी पहुँच जाता है। जब आपका मन किसी चीज का इतना तीव्र चिन्तन करता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, दर्प, अहंकार सब छूट जाते हैं तब आपका तन भी वहीं प्रकट हो जाता है और अपने स्थान से गायब हो जाता है। यही बात 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में वशिष्ठजी महाराज भी कहते हैं कि : 'हे रामजी ! जीव का जो शरीर दिखता है वह वास्तविक नहीं है। वास्तविक शरीर तो मनोमय शरीर है। मनोमय शरीर का किया हुआ सब होता है।'

जैसे, कार दिखती है तो उसमें दो चीजें हैं : (१) कार का बाह्य ढाँचा और (२) अंदर का इंजन, 'गियर बॉक्स' आदि। कार भागती हुई दिखती है लेकिन उसका मूल कारण अंदर के पूर्जे हैं। कार आगे-पीछे भी चलाई जाती है, धीरे भी चलती है, तेजी से भी चलती हुई दिखती है और चलानेवाला भी दिखता है। कार को ड्राइवर चलाता है और ड्राइवर को उसके अंदर का संकल्प चलाता है। कार और ड्राइवर दोनों का संचालन करनेवाली सूक्ष्म सत्ताएँ हैं।

आपको गाड़ी दिखेगी, अंदर का 'गियर बॉक्स' नहीं दिखेगा। ऐसे ही ड्राइवर के हाथ दिखेंगे, उसके अंदर का संकल्प नहीं दिखेगा। जो दिखता है उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं होती। चलानेवाली सत्ता कोई और होती है। उसी सत्ता के बल पर सब कार्य होते हैं। उस सत्ता के मूल को जान लो तो बेड़ा पार हो जाये। स्नेहसहित उस सत्ता के मूल का स्मरण और उस सत्ता के मूल में शांति व आनंद पाने में लग जाओ। सारी सत्ताओं का मूल है आत्मा-परमात्मा।

जिसको अपने प्राणों की परवाह नहीं, मृत्यु का नाम सुनकर बिल्कुल विचलित न होकर उसका स्वागत करने के लिये जो सदा तत्पर रहता है उसके लिए संसार में कोई कार्य असाध्य नहीं। उसे किसी बाह्य शस्त्रों की जरूरत नहीं, साहस ही उसका शस्त्र है। उस शस्त्र से वह अन्याय का पक्ष लेनेवालों को पराजित कर देता है फिर भी उनके लिए बुरे विचारों का सेवन नहीं करता।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

चारित्रिक क्रांति के उन्नायक पूज्य बापू

[पूज्य बापू के ६०वें अवतरण दिवस : १३ अप्रैल पर विशेष]

भारत की इस पावन धरा तथा ऋषियों के वंशजों पर भगवान की विशेष कृपा रही है। जब कभी भी इस भारत भूमि पर मानवजाति को किसी दुर्गुण ने ग्रसित किया, उसको पतनोन्मुख बनाने की कुचेष्टा की तब-तब यहाँ भगवान एवं भगवद्प्राप्त महापुरुषों का अवतरण होता रहा है। विश्व के किसी भी दूसरे देश में ऐसा अनुपम उदाहरण नहीं मिलता है।

इस भारतभूमि पर तो भगवान ने स्वयं प्रतिज्ञा की है :

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम॥

'हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।' (गीता : ४.७)

इस अनंत कालचक्र से जूझ रहे मानव के समक्ष समय-समय पर कई ऐसी बाधाएँ आती हैं जो उसकी वास्तविक उन्नति में बाधक बन जाती हैं। काल का दुष्प्रभाव और उसके पुराने कुसंस्कार सामाजिक संस्कारों को विकृत कर देते हैं जिससे पूरा समाज पतन के गर्त में गिरता चला जाता है।

समाज को ऐसी विकट परिस्थिति से निकालकर उसे सच्ची सुख-शांति एवं वास्तविक उन्नति के मार्ग पर ले जाने के लिए ही भगवान तथा भगवद्प्राप्त महापुरुष इस अवनि पर अवतरित होते हैं। विभिन्न युक्तियों से मानव का वास्तविक कल्याण करने में समर्थ ऐसे अलौकिक पुरुष विरले ही होते हैं। परन्तु यह बात भी उतनी ही सच है कि यह भारतभूमि ऐसे विरले सत्पुरुषो से रिक्त कभी नहीं हुई।

आज जब भारतवासी अपनी महान् संस्कृति को भूलकर विकृत पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करने में लगे हुए हैं और इसके दुष्प्रभाव से विश्वगुरु कहलानेवाले भारत में चारित्रिक पतन का विनाशकारी तांडव चल रहा है। ऐसे समय में चारित्रिक क्रान्ति के उन्नायक पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू हमारे बीच उपस्थित हैं।

भारतीय ब्रह्मर्षियों की गूढ़ रहस्यमयी आत्मविद्या के आचार्य तथा योग-सामर्थ्य के धनी पूज्य बापू भारतभूमि के ऐसे ही एक दुर्लभ संतरत्न हैं। भारतवर्ष की आध्यात्मिक एवं चारित्रिक उन्नति की बागडोर अपने समर्थ हाथों में लेकर आपने जागृति का जो शंखनाद किया है वह एक अभूतपूर्व दैवी कार्य है।

'धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ-कुछ गया परन्तु चरित्र गया तो सब कुछ गया।' भारतीय मनीषियों के इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए आप भी चरित्रनिर्माण पर विशेष बल देते हैं। चरित्रनिर्माण के साथ आध्यात्मिकता का संगम करके आप मानव को महामानव तथा महामानव को महेश्वर बनाने के एक अद्भुत मार्ग पर ले जा रहे हैं।

पूज्य बापू के इस महान् दैवी कार्य का जीवंत उदाहरण यह छोटी-सी घटना है जो छोटी होने पर भी बहुत कुछ सीख दे देती है।

एक बार साबरमती, अमदावाद में स्थित संत श्री आसारामजी आश्रम में 'ध्यान योग शिविर' चल रहा था। उस समय आश्रम छोटा-सा ही था अतः साधकों के लिए नहाने-धोने की पर्याप्त व्यवस्था नहीं थी। साबरमती नदी में पानी की एक गहरी धारा बह रही थी उसी पर महिलाओं एवं पुरुषों के नहाने-धोने के लिए दो अलग-अलग घाट बना दिये गये।

नदी के उस पार भारतीय सेना की छावनी है जिसे 'हनुमान कैम्प' कहा जाता है। सुबह के समय सेना के दो जवान दौड़ लगाते हुए नदी के किनारे तक पहुँच गये जहाँ महिलाओं के स्नान का घाट बना था। उनके कारण उन शिविरार्थी साधिकाओं को नहाने में परेशानी हो रही थी क्योंकि वे दोनों जवान जानबूझकर वहाँ से खड़े-खड़े साधिकाओं को घूर रहे थे।

पूज्य बापू नित्य सुबह नदी किनारे घूमने जाया करते थे। पूज्यश्री की दृष्टि दूर से उन जवानों पर पड़ी। घट-घट की जाननेवाले समर्थ योगी को वस्तुस्थिति समझने में कैसे देर लगती ? पूज्यश्री शीघ्र ही उन जवानों के पास पहुँचे और उनके हाथ पकड़कर बोले : "चुपचाप मेरे साथ चलो।"

पूज्य बापू के मुखमण्डल तथा वाणी के तेज को देखकर वे जवान मानो सूखी लकड़ी के खम्भे से हो गये। उनकी हिम्मत ही नहीं हुई कि वे कुछ बोलें या प्रतिकार करें। रस्सी से बँधी गाय की तरह वे पूज्य बापू के साथ चल दिये।

दोनों को नाव से इस पार लाया गया। पूज्यश्री दोनों का गिरेबान (कॉलर) पकड़कर अपनी कुटिया की ओर बढ़ने लगे। कुछ आश्रमवासियों ने देखा तो दौड़कर पूज्यश्री के पास आये और बोले :

"बापूजी ! हम पकड़ें ?"

पूज्य बापू ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया : "नहीं, इनमें इतनी शक्ति नहीं है कि अपने-आपको मुझसे छुड़ा सकें।" फिर उन्हें अपनी कुटिया में ले जाकर बंद कर दिया और सेवकों को आदेश दिया कि : "इनके मुखिया को फोन करके कहो कि यदि अपने जवान चाहिए तो यहाँ आकर ले जाय।"

थोड़ी ही देर बाद सेना का एक ऑफिसर गाड़ी लेकर आश्रम में पहुँचा। गाड़ी से उतरते ही वह कुटिया की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा तो भक्तों ने उसे रोककर कहा : "भाई साहब ! आपके जूते उतार दो। यह बापूजी का निवासस्थान है। जूते ले जाना मना है।"

इस पर उसने चिढ़कर जवाब दिया : "हम मिलेट्रीवाले जूते नहीं उतारते। ये हमारी वर्दी के अन्तर्गत आते हैं, समझे ?" लेकिन ज्यों ही उसने अपना पैर दूसरी सीढ़ी पर रखना चाहा त्यों ही उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया। उसने शायद ही कभी सोचा होगा कि ऐसा भी हो सकता है। उसका पैर पहली सीढ़ी से आगे नहीं बढ़ सका। लाख प्रयास करने के बाद भी वह अपने पैर को ऊपर की सीढ़ी पर नहीं रख सका। अब उसकी सारी अक्कड़ धूल में मिल चुकी थी। घबराते हुए वह नीचे उतरा और जूते उतारकर बड़े नम्र भाव से कुटिया को प्रणाम करके अंदर गया। अंदर पहुँचते ही उसने पूज्य बापू को देखकर प्रणाम किया।

पूज्यश्री ने उसे डाँटते हुए कहा : "तुम लोग देश के रक्षक हो या भक्षक ? देशवासियों ने तुम्हे यह वर्दी इस देश की माँ-बहनों की लाज बचाने के लिए पहनाई है या उन पर बुरी नज़र डालने के लिए ? जब तुम लोग ही ऐसा पाप करने लगोगे तो दूसरों को कैसे सुधारा जायेगा ?"

पूज्यश्री की निर्भीक तेजस्वी वाणी को सुनकर वह थर-थर काँपने लगा। इन समर्थ योगी की महान् शक्ति का छोटा-सा अनुभव तो वह सीढ़ियों पर चढ़ते समय ही कर चुका था। गिड़गिड़ाते हुए उसने पूज्यश्री से क्षमा माँगी और वचन दिया कि : "जो आप कहेंगे इनको वही सजा दी जायेगी।"

पूज्यश्री ने उन दोनों जवानों को कमरे से बाहर निकाला। उन्हें चरित्र की महानता बतायी और फिर तीनों को प्रसाद दिया। पूज्य बापू ने उनके ऑफिसर से कहा : "इन्हें कोई सजा नहीं देना। अब ये दुबारा ऐसी गलती नहीं करेंगे।"

वाह री संतों की करुणा ! कैसी महानता है ! क्रोध ऐसा कि मानो अभी प्रलय हो जाय और कुछ ही देर में प्रेम भी उतना ही ! संसार में रहकर भी संसार से परे। अपनी अविचल आत्ममस्ती में रमण करनेवाले संतों की लीला को कोई संत ही जान सकते हैं।

१५-२० दिन बाद वे दोनों जवान सत्संग में आये और बापूजी को प्रणाम करके बोले :

"महाराज! जब आपने हमें पकड़ा था तब हमारी शक्ति पता नहीं कहाँ चली गई थी ! उस

दिन के बाद हमें अण्डा, माँस, शराब आदि से घृणा होने लगी है। हमारे दुर्गुण अपने आप पलायन हो रहे हैं और कोई अदृश्य शक्ति हमें बार-बार यहाँ सत्संग में आने की प्रेरणा देती है।''

कैसी अद्भुत लीला होती है संतों की ! जवानों का कॉलर पकड़कर लाये, कमरे में बंद किया, डॉट लगायी परन्तु इस कठोरता के द्वारा उन्हें सच्चे मनुष्य बना दिये। प्रेम करके तो कृपा करते ही हैं लेकिन सजा देकर भी वैसी ही कृपा करते हैं। दोनों तरफ से कल्याण करने की शक्ति भगवान और भगवद्प्राप्त संतों के अलावा और भला किसमें हो सकती है ?

'श्रीरामचरितमानस' में संतों की करुणा-कृपा का बखान करते हुए संत श्री तुलसीदासजी कहते हैं कि : 'कवियों ने संतों के हृदय को मक्खन के समान कह तो दिया परन्तु वे असली बात नहीं कह सके। क्योंकि मक्खन तो अपने को ताप मिलने के कारण पिघलता है जबकि परम पवित्र संत दूसरों के दुःख से पिघलते हैं।'

भारत के नवयुवकों में बढ़ रहे चारित्रिक पतन को देखते हुए पूज्य बापू ने युवाओं के चारित्रिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए 'युवाधन सुरक्षा अभियान' के रूप में चारित्रिक क्रांति का सूत्रपात किया है। पूज्यश्री के मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद से यह अभियान पूरे भारत में चल रहा है। आइये, हम सभी इस महान् भारत के भावी कर्णधारों को सुसंस्कारवान् एवं चरित्रवान् बनाने के दैवी कार्य में सहभागी बनकर अपना जीवन सार्थक करें।

गुरु का सान्निध्य प्रबल आध्यात्मिक स्पन्दनों के द्वारा शिष्य को ऊँची भूमिका पर ले जाता है और उसे प्रेरणा देता है। गुरु की महिमा शिष्य की स्थूल प्रकृति का परिवर्तन करने में निहित है।

गुरुकृपा से ही मनुष्य को जीवन का सच्चा उद्देशय समझ में आता है और आत्म-साक्षात्कार करने की प्रबल आकांक्षा होती है।

(आश्रम की पुस्तक 'गुरुभक्तियोग' से)

समय बड़ा बलवान्...

※ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ※

श्रीकृष्ण के स्वधामगमन के बाद अर्जुन उनकी आज्ञा के अनुसार द्वारिका से यदुवंश की स्त्रियों, वृद्धों एवं बच्चों को लेकर इन्द्रप्रस्थ की ओर चल पड़े। चलते-चलते बुद्धिमान् एवं सामर्थ्यशाली अर्जुन ने अत्यंत समृद्धशाली पंचनद देश (पंजाब) में पहुँचकर पड़ाव डाला।

एकमात्र अर्जुन के संरक्षण में ले जायी जाती हुई इतनी अनाथ स्त्रियों का देखकर वहाँ रहनेवाले लुटेरों के मन में लोभ पैदा हुआ। आपस में चर्चा करके उन्होंने अर्जुन के साथ आये हुए लोगों पर धावा बोल दिया। यह देखकर अर्जुन अपने गांडीव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने लगे। बड़ी मुश्किल से गांडीव पर प्रत्यंचा चढ़ी परन्तु जब वे अपने अस्त्र-शस्त्रों का, मंत्रों का चिंतन करने लगे तब उनकी याद बिल्कुल नहीं आयी। वे बड़े लज्जित हुए। लुटेरे यदुवंशी स्त्रियों को ले चले।

समय बड़ा बलवान् है, मनुज नहीं बलवान्।
काबे अर्जुन लूटिया, वही धनुष वे ही बाण ॥

जिस गांडीव से अर्जुन ने अनेक महारथियों को परास्त किया था, उसी गांडीव से आज वे यदुवंश की स्त्रियों की रक्षा तक न कर सके। लुटेरों से वे परास्त हो गये। अर्जुन के देखते-ही-देखते वे लुटेरे स्त्रियों को ले गये। कुछ स्त्रियों को वे जबरन ले जा रहे थे तो कुछ स्त्रियाँ उनके आतंक के भय से चुपचाप स्वयं ही उनके साथ चली गयीं।

अर्जुन ने अपहरण से बची हुई कुछ स्त्रियों को जहाँ-तहाँ बसा दिया तथा कुछ वृद्धों, बालकों एवं स्त्रियों को लेकर वे इन्द्रप्रस्थ आये। इस प्रकार सबकी समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन आँसू बहाते हुए महर्षि व्यासजी के आश्रम पर गये एवं वहाँ उनके दर्शन किये।

अर्जुन ने वेदव्यासजी को प्रणाम किया। वेदव्यासजी ने उनकी तेजोहीन अवस्था देखकर पूछा : ''पार्थ ! क्या तुमने रजस्वला स्त्री से समागम किया है या किसी ब्राह्मण का वध कर दिया है ? कहीं तुम युद्ध में परास्त तो नहीं हो गये क्योंकि तुम श्रीहीन-से दिखाई देते हो ? भरतश्रेष्ठ ! तुम कभी पराजित हुए हो- यह मैं नहीं जानता, फिर तुम्हारी ऐसी दशा क्यों है ? पार्थ ! यदि मेरे सुनने योग्य हो तो अपनी इस मलिनता का कारण मुझे शीघ्र बताओ।''

तब अर्जुन ने कहा : ''भगवन् ! भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी लीला समेट ली है। हम उनके दर्शन करते थे, तब हमारे बाणों में बल था। हमारे कई असंभव-से कार्य भी श्रीकृष्ण की कृपा से सफल हो जाते थे। श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर चले गये। मैं इस संसार में उनके बिना रहना नहीं चाहता। इसके सिवा जो दूसरी घटना घटित हुई है, वह इससे भी अधिक कष्टदायक है। आप इसे सुनिये।

जब मैं उस घटना का चिंतन करता हूँ, तब मेरा हृदय बारंबार विदीर्ण होने लगता है। ब्रह्मन् ! पंजाब में लुटेरों ने मुझसे युद्ध ठानकर मेरे देखते-देखते यदुवंश की हजारों स्त्रियों का अपहरण कर लिया। मैंने अपने गांडीव धनुष से उनका सामना करना चाहा परन्तु उन्हें परास्त न कर सका। मेरी भुजाओं में पहले जैसा बल था, वैसा अब नहीं रहा। महामुने ! नाना प्रकार के अस्त्रों का जो मुझे ज्ञान था वह अब विलुप्त हो गया है। मेरे सभी बाण सब ओर जाकर क्षण भर में नष्ट हो गये। मेरा पराक्रम नष्ट हो गया।''

वेदव्यासजी बोले : ''कुन्तीकुमार ! वे समस्त यदुवंशी देवताओं के अंश थे। वे देवाधिदेव श्रीकृष्ण के साथ ही यहाँ आये थे और साथ ही चले गये। यही कालचक्र का प्रभाव है।

समय-समय की बात है। वह भी समय था जब तुम विजयी होते थे और शत्रु हारते थे। यह भी समय का ही प्रभाव है कि साधारण लोगों से तुम हार गये।

यदुवंशीजन ब्राह्मणों के शाप से दग्ध होकर नष्ट हुए हैं। अतः तुम उनके लिये शोक न करो। उन महामनस्वी वीरों की भवितव्यता ही ऐसी थी। तुम्हारे देखते-देखते स्त्रियों का जो अपहरण हुआ है उसमें भी एक रहस्य है।

वे स्त्रियाँ पूर्वजन्म में अप्सराएँ थीं। एक बार आत्मज्ञानी अष्टावक्र मुनि जल में खड़े-खड़े अपने ब्रह्मानंद में विश्रान्ति पा रहे थे। मुनि के सिर पर केवल जटाओं का ही भार था, शेष पूरा शरीर जलाशय में था। ये अप्सराएँ वहाँ से गुजरीं और उन्होंने मुनि की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया।

मुनि ने कहा : 'तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। जो तुम्हें चाहिए, माँग लो।'

उर्वशी ने कहा : 'हमने आपकी प्रसन्नता प्राप्त कर ली, अब और क्या माँगना ? हमें तो सब मिल गया।''

...लेकिन दूसरी अप्सराओं ने कहा : 'हम यही वरदान चाहती हैं कि हम श्रीहरि के साथ क्रीड़ा करें। हमारे पति वासुदेव हों।'

अष्टावक्र मुनि : 'अच्छा... ऐसा ही होगा।'

ऐसा कहकर जब वे जल से बाहर निकले तो उनके शरीर के टेढ़े-मेढ़े अंग देखकर अप्सराओं को हँसी आ गयी। मुनीश्वर को पता चल गया कि मेरी देह को देखकर इन्हें हँसी आ रही है। वे बोले :

'श्रीकृष्ण को तो तुम वरोगी लेकिन अंत में तुम्हारी दुर्गति होगी। तुमको दस्यु ले जायेंगे।'

मुनि ने शाप दे दिया। अप्सराओं ने क्षमायाचना की तो प्रसन्न होकर मुनि ने कहा :

'अच्छा... उसके बाद तुम्हारा देहत्याग होगा और तुम पुनः स्वर्ग में पहुँच जाओगी।'

मुनि के शापवश वे लूटेरों (दस्युओं) के हाथों पड़ीं। इसीलिये अर्जुन ! तुम्हारे बल का क्षय हुआ ताकि वे शाप से छुटकारा पा जायें। अब वे अपना

पूर्व रूप और स्थान पा चुकी हैं अतः उनके लिये भी शोक करने की आवश्यकता नहीं है।

जो स्नेहवश तुम्हारे रथ के आगे चलते थे, सारथि का काम करते थे वे वासुदेव कोई साधारण पुरुष नहीं अपितु साक्षात् चक्र-गदाधारी पुरातन ऋषि चतुर्भुज नारायण थे। वे विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण इस पृथ्वी का भार उतार शरीर त्याग करके अपने उत्तम परम धाम को जा पहुँचे हैं।

पुरुषप्रवर ! महाबाहो ! तुमने भी भीमसेन और नकुल-सहदेव की सहायता से देवताओं का महान् कार्य सिद्ध किया है। कुरुश्रेष्ठ ! मैं समझता हूँ कि अब तुम लोगों ने अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर लिया है। तुम्हें सब प्रकार से सफलता प्राप्त हो चुकी है। अब तुम्हारे परलोकगमन का समय आया है और यही तुम लोगों के लिये श्रेयस्कर है।

भरतनंदन ! जब उद्भव का समय आता है तब इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि, तेज और ज्ञान का विकास होता है और जब विपरीत समय उपस्थित होता है, तब इन सबका नाश हो जाता है।

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय।
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया ॥

'धनंजय ! काल ही इन सबकी जड़ है। संसार की उत्पत्ति का बीज भी काल ही है और काल ही फिर अकस्मात् सबका संहार कर देता है।'

(श्रीमहाभारत, कौसल पर्व : ८.३३,३४)

काल का प्रभाव सब पर पड़ता ही है अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कालातीत श्रीहरि के तत्त्व में विश्रांति पा ले।''

श्रीहरि के तत्त्व में विश्रांति पा लें तो फिर उतार-चढ़ाव की तकलीफें नहीं सहनीं पड़तीं।

वेदव्यासजी कहते हैं : ''अर्जुन ! अब तुम भी अपने भाइयों समेत परम गति को प्राप्त हो जाओ। हिमालय में जाकर तप करो। इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में और बुद्धि को अपने परब्रह्म परमात्मा में लीन करो तभी तुम्हें शांति मिलेगी। इसीमें तुम्हारा परम कल्याण निहित है।''

जिसके साथ श्रीकृष्ण थे ऐसे अर्जुन को भी इन्द्रियों को समेटकर मन में, मन को बुद्धि में और बुद्धि को अपने वास्तविक स्वरूप में लाना पड़ता है। यही बात अगर हमें अभी समझ में आ जाये तो हमारा भी बेड़ा पार हो जाये।

इसके लिये समय बचाकर अन्तर्मुख होना चाहिए। अन्तर्मुख नहीं हुए तो महाराज ! **'समय बड़ा बलवान्...'** वही बात। समय के फेर से कभी कोई ऊँचा तो कभी नीचा, कभी कोई धनवान् तो कभी निर्धन, कभी कोई राजा तो कभी रंक हो जाता है। कभी कोई व्यक्ति कुटुम्बियों से पूजा जाता है तो कभी उन्हीं से धिक्कारा जाता है।

वही व्यक्ति जो दुकान पर था, कमाता था, बच्चों के लिए परिश्रम करता था, मकान बनवाता था तो सबको प्रिय लगता था। अब बूढ़ा हो गया, दुकान चलाने के लायक न रहा तो घर में अपने ही बेटों से दुतकारा जाता है।

वही व्यक्ति था जो सप्ताह भर के लिये एकान्त में, मौनमंदिर जाना चाहता था तो घरवाली रोती थी, बच्चे रोते थे... जब बूढ़ा हो जाता है तो लोग मनौतियाँ मानते हैं कि 'काका का कुछ हो जाये ! (यह बूढ़ा मर जाय तो अच्छा।)' **समय बड़ा बलवान्...**

इसीलिये ईश्वर के सिवाय कहीं भी मन लगाया तो अंत में पछताना ही पड़ता है, रोना ही पड़ता है।

अभी जो मित्र दिखते हैं वे ही समय पाकर पराये हो जाते हैं और जो पराये दिखते हैं वे अपने हो जाते हैं। अपना-पराया यह मन और बुद्धि का धोखा है। वास्तव में अपने आत्मा-परमात्मा के सिवाय कोई अपना नहीं है।

जैसे, नदी की धारा में सब बह जाता है, ऐसे ही समय की धारा में सब प्रवाहित हो जाता है। नदी दो पहाड़ियों के बीच से बह रही है... लकड़ियाँ गिरी, नदी के बहाव में मिलीं, थोड़ी दूर पर फिर दूसरी मिलीं... कोई किसी किनारे रुकी तो कोई किसी किनारे रुकी और कोई सागर में चली गयीं... ऐसे ही शादी-ब्याह हुआ, पति-पत्नी मिले, संतति हुई, समय चलता रहा... आखिर में कोई किसी किनारे पर गया तो कोई किसी किनारे पर गया

यही तो संसार है । और क्या है ? ऐसे ही मित्र मिले, पड़ोसी मिले... फिर बिछुड़े । जैसे, बहती गंगा की धारा में बालू के कण मिलते हैं, पत्थर-कंकड़ मिलते हैं फिर बिछुड़ते हैं ऐसे ही काल की धारा में कोई मिलता है कोई बिछुड़ता है... सब सपना हो जाता है । शिवजी कहते हैं :

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।
सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

(श्रीरामचरित०)

इस असार संसार में केवल ईश्वर-भजन ही सार है ।

कोई कहे कि हरि के जाने के बाद उनके कुल की स्त्रियों को ही लुटेरे ले गये, उनका धन छीनकर ले गये तो ऐसे हरि का भजन करके हमें क्या फायदा होगा ? नहीं... ऐसी बात नहीं है । श्रीहरि का विग्रह माया में लीन हो सकता है लेकिन श्रीहरि का तत्त्व तो सदैव, सर्वत्र, सब दिलों में विद्यमान है । उन श्रीहरि का चिन्तन-ध्यान करने से मन-बुद्धि की चंचलता एवं बेवकूफी दूर होती है, जीव के कल्मष दूर होने लगते हैं तथा वह अपने हरि-स्वरूप के निकट आने लगता है । उन श्रीहरि को सत्य समझकर अंतर्मुख होने से जीव का वास्तविक कल्याण हो जाता है । बाकी तो समय के फेर से महारथी अर्जुन जैसे भी दस्युओं से हार गये । कभी धनी निर्धन हो जाते हैं, अमीर गरीब हो जाते हैं, गरीब अमीर हो जाते हैं ।

श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! यह कालचक्र बड़ा विलक्षण है । जो धन मिला सो मिला, जो गया सो गया । जो मान मिला सो मिला, जो अपमान हुआ सो हुआ । जो सुखद अवस्थाएँ आयीं सो आयीं और जो दुःखद अवस्थाएँ गयीं सो गयीं । समय की धारा में सब बीता जा रहा है ।'' अतः हे साधक ! बीते हुए का शोक न कर । आनेवाले भविष्य में बाह्य जगत में कुछ विशेष बनने की वासना न कर । वर्त्तमान में अपने परमात्म-स्वभाव में, साक्षी सच्चिदानंद ईश्वर में स्थित होना ही सब सारों का सार है । उसीके सुमिरन, उसीके आनंद, उसीके चिंतन में लगे रहो ।

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

गुरुमंत्र का प्रभाव

स्कंद पुराण ब्रह्मोत्तरखंण्ड में कथा आती है कि : काशीनरेश की कन्या कलावती के साथ मथुरा के दाशार्ह नामक राजा का विवाह हुआ । विवाह के बाद राजा ने अपनी पत्नी को अपने पलंग पर बुलाया लेकिन पत्नी ने इनकार कर दिया । तब राजा ने बल-प्रयोग की धमकी दी ।

पत्नी ने कहा : ''स्त्री के साथ संसार-व्यवहार करना हो तो बलप्रयोग नहीं, स्नेह-प्रयोग करना चाहिये । नाथ ! मैं आपकी पत्नी हूँ लेकिन आप मेरे साथ बलप्रयोग करके संसार-व्यवहार न करें ।''

लेकिन वह राजा था । पत्नी की बात सुनी-अनसुनी करके नजदीक गया । ज्यों ही उसने पत्नी का स्पर्श किया त्यों ही उसके शरीर में विद्युत जैसा करंट लगा । उसका स्पर्श करते ही राजा का अंग-अंग जलने लगा । वह दूर हटा और बोला : ''क्या बात है ? तुम इतनी सुंदर और कोमल हो फिर भी तुम्हारे शरीर के स्पर्श से मुझे जलन होने लगी ?''

पत्नी : ''नाथ ! मैंने बाल्यकाल में दुर्वासा ऋषि से शिवमंत्र लिया था । उसके जपने से मेरी सात्त्विक ऊर्जा का विकास हुआ है और मैं इसीलिये आपके नजदीक नहीं आती थी । जैसे, अंधेरी रात और दोपहर एक साथ नहीं रहते, वैसे ही आपने शराब पीनेवाली वेश्याओं के साथ और कुलटाओं के साथ जो संसार-भोग भोगे हैं उससे आपके पाप के कण आपके शरीर में, मन में, बुद्धि में अधिक हैं और मैंने जप किया है उसके कारण मेरे शरीर में ओज, तेज, अध्यात्मिक कण अधिक हैं । इसीलिये मैं आपसे थोड़ी दूर रहकर आपसे प्रार्थना करती थी । आप बुद्धिमान् हैं, बलवान् हैं, यशस्वी हैं और धर्म की बात भी आपने सुन

रखी है फिर भी आपने शराब पीनेवाली वेश्याओं के साथ और कुलटाओं के साथ भोग-भोगे हैं।''

राजा : ''तुम्हें इस बात का पता कैसे चल गया ?''

रानी : ''नाथ ! हृदय शुद्ध होता है तो यह ख्याल आ जाता है।''

राजा प्रभावित हुआ और रानी से बोला : ''तुम मुझे भी भगवान् शिव का वह मंत्र दे दो।''

रानी : ''आप मेरे पति हैं मैं आपकी गुरु नहीं बन सकती। आप और हम दोनों गर्गाचार्य महाराज के पास चलें।''

दोनों गुरुजी के पास गये एवं गुरुजी से प्रार्थना की। गुरुजी ने स्नान आदि से पवित्र करके, यमुना तट पर अपने शिवस्वरूप के ध्यान में बैठकर राजा-रानी को निगाह से पावन किया फिर शिवमंत्र देकर अपनी शांभवी दीक्षा से राजा के ऊपर शक्तिपात किया।

कथा कहती है कि देखते-ही-देखते कोटि-कोटि कौए राजा के शरीर से निकल-निकलकर पलायन कर गये। काले कौए अर्थात् तुच्छ परमाणु। काले कर्मों के तुच्छ परमाणु करोडों की संख्या मे सूक्ष्मदृष्टि के दृष्टाओं द्वारा देखे गये। सच्चे संतों के चरणों में बैठकर दीक्षा लेनेवाले सभी साधकों को इस प्रकार के लाभ होते ही हैं। मन, बुद्धि में पड़े हुए तुच्छ कुसंस्कार भी मिटते हैं। आत्म-परमात्मप्राप्ति की योग्यता् भी निखरती है। व्यक्तिगत जीवन में सुख-शांति, सामाजिक जीवन में सम्मान मिलता है तथा मन-बुद्धि में सुहावने संस्कार भी पड़ते हैं और भी अनगिनत लाभ होते हैं जो निगुरे, मनमुख लोगों की कल्पना में भी नहीं आ सकते। मंत्रदीक्षा के प्रभाव से हमारे पाँचों शरीरों के कुसंस्कार व काले कर्मों के परमाणु क्षीण होते जाते हैं। थोड़ी ही देर में राजा निर्भार हो गया एवं भीतर के सुख से भर गया।

शुभ-अशुभ, हानिकारक एवं सहायक बैक्टीरिया हमारे शरीर में रहते हैं। जैसे पानी का गिलास होंठ पर रखकर वापस लायें तो उस पर लाखों जीवाणु पाये जाते हैं यह वैज्ञानिक अभी बोलते हैं। लेकिन शास्त्रों ने तो लाखों वर्ष पहले ही कह दिया :

सुमति-कुमति सबके उर रहहिं।

जब आपके अंदर अच्छे विचार रहते हैं तब आप अच्छे काम करते हैं और जब भी हलके विचार आ जाते हैं तो आप न चाहते हुए भी कुछ गलत कर बैठते हैं। गलत करनेवाला कई बार अच्छा भी करता है तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य शरीर पुण्य और पाप का मिश्रण है। आपका अंतःकरण शुभ और अशुभ का मिश्रण है। जब आप लापरवाह होते हैं तो अशुभ बढ़ जाते हैं अतः पुरुषार्थ ये करना है कि अशुभ क्षीण होता जाये और शुभ पराकाष्ठा तक, परमात्मप्राप्ति तक पहुँच जाये।

*

'खुदा मेरा दोस्त है...'

स्वामी शरणानंदजी की १० वर्ष की उम्र में बाहर की आँखे चली गयीं। सर्वेश्वर, परमेश्वर सर्वोपरि सूत्रधार है, ऐसी श्रद्धा और सच्चाई, संयम व जप ने उन्हें ईश्वर का दिव्य अनुभव कराया। आनंदमयी माँ, गाँधीजी एवं दूसरे जाने-माने उच्च कोटि के संत उनके आत्मिक अनुभवसंपन्न वचनों का श्रवण करते थे, आदर करते थे।

एक पादरी ने स्वामी शरणानंदजी से पूछा : ''आप ईसा-मसीह को जानते हैं ?''

महाराज जी : ''जी हाँ, जानता हूँ।''

पादरी : ''उनके विषय में आप क्या जानते हैं ?''

महाराज जी ने बड़ी प्रसन्नता व आत्मविश्वास के साथ कहा : ''भाई ! मसीहा खुदा के पुत्र हैं, मैं खुदा का दोस्त हूँ। मसीहा मेरा सगा भतीजा है। मैं उसको अच्छी तरह जानता हूँ। मसीहा मुझे बहुत प्यारा लगता है।''

महाराज जी का उत्तर सुनकर पादरी स्तम्भित रह गया। पादरी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि भारत की इस धरती पर ईश्वर को मित्र रूप में, पिया रूप में, पुत्र रूप में और सोऽहंस्वरूप में, अहं ब्रह्मास्मि के रूप में पानेवाले पुरुष हुए हैं। मरने के बाद का वायदा नहीं और स्वर्ग के सुख की कल्पनाएँ नहीं, वर्तमान में, जीते-जी परम पुरुष परमात्मा का अनुभव यहीं किया जा सकता है। परमात्म-अनुभव संपन्न शरणानंदजी की अधिकारपूर्ण वाणी सुनकर पादरी खूब प्रभावित हुआ. प्रभावित करने आया था लेकिन स्वयं ही प्रभावित हो गया।

यदि कोई प्रभु को अपना मानकर उनके प्रति प्रेमभाव रखेगा और उन्हीं के नाते प्राणीमात्र के प्रति सद्भाव रखेगा तो उसे सब जगह परमात्मा मिलेगा, अन्यथा कहीं नहीं मिलेगा।

साँई कँवररामजी

[अंक क्रमांक ९८ का शेष]

गरीबों के हमदर्द

साँई कँवररामजी का दिल गरीबों के लिए बहुत जल्दी पिघल जाता था।

एक बार जेकबाबाद में उनका भजन कार्यक्रम था। वहाँ सेठ मेहलूमल का कर्ज चुकाने में असमर्थ एक गरीब राधोमल ने कर्ज माफ करवाने के लिए साँई कंवरररामजी से प्रार्थना की।

साँईंजी ने उसी समय सेठ मेहलूमल को बुलवाया और राधोमल का कर्ज माफी के लिए प्रार्थना की। किन्तु बहुत समझाने पर भी वह नहीं माना तब साँई कँवररामजी के मुख से निकल गया कि : ''वह हाथ किस काम का जो किसी गरीब के काम नहीं आये ?''

कँवररामजी की झोली में भजन के समय जितने पैसे आये उन्हें राधोमल को देकर मेहलूमल का कर्ज चुकता करवा दिया लेकिन मेहलूमल को जल्दी ही डायबिटीज हो गया। हाथ में एक फुंसी निकली जिसने आगे चलकर उग्र रूप धारण कर लिया और आखिर वह हाथ पूरे-का-पूरा कटवाना पड़ा फिर भी रोग से छुटकारा नहीं मिला और अंत में वह दुःखी होकर मर गया।

संतों के वचनों में अद्‌भुत शक्ति होती है। उनके मुख से निकले हुए वचन लागू होकर ही रहते हैं।

भजन की शक्ति

एक बार महात्मा गाँधीजी 'स्वराज आन्दोलन' के प्रचार-प्रसार हेतु सक्खर गये थे। उनका भाषण सुनने के लिए वहाँ भारी भीड़ एकत्रित थी। शोरगुल इतना था कि पुलिस भीड़ को चुप नहीं करा पा रही थी। इतने में एक नेता की दृष्टि साँई कँवररामजी पर पड़ी। नेता उनका भक्त था। उसने उनको मंच पर बुलवाया। साँई कँवररामजी ने मंच पर आकर अभी 'हाँ...' शब्द ही उच्चारण किया कि भीड़ एकदम शांत हो गई। लोग मंत्रमुग्ध होकर उनका भजन सुनने लगे। महात्मा गाँधीजी यह देखकर दंग रह गये। उन्होंने साँई कँवररामजी को गले लगाया और कहा :

''भगतजी ! आप धन्य हैं ! धन्य है आपके भजन की शक्ति !''

एक बार उनका भजन रिकार्ड करने के लिए एक जर्मन व्यक्ति सक्खर बुलाया गया जो उनकी आवाज़ सुनते ही वह उन पर फिदा हो गया। वह मस्ती में आकर नाचने लगा। उसने अपनी भाषा में कहा कि : ''मैंने न सिर्फ हिन्दुस्तान बल्कि यूरोप एवं एशिया खण्ड के अनेक देशों में रिकार्डिंग का काम किया है लेकिन ऐसी मधुर आवाज़ कहीं भी नहीं सुनी। निश्चय ही यह आवाज़ एक देवता की ही है। इनमें ईश्वर की शक्ति है।''

ईश्वर-प्रेम

साँई कँवररामजी को सद्‌गुरु और ईश्वर के नाम से बहुत प्रीति थी। वे मानों उनके नाम पर बिके हुए थे। उनके पास कोई सद्‌गुरु या ईश्वर का नाम लेकर जाता तो कैसा भी काम क्यों न हो, उसे करने को वे उद्यत हो जाते। लोग उनके ऐसे स्वभाव का फायदा उठाकर उनसे अपना गलत कार्य भी सिद्ध करवा लेते।

एक बार एक मुसलमान औरत ने ईश्वर के नाम पर साँई कँवररामजी की पैरवी से जेल में कैद अपने गुनहगार बेटे को दो बार रिहा करवाया था। दूसरी बार साँईंजी ने उसके बेटे के सिर पर हाथ रखते हुए आशीर्वाद दिया : ''भगवान् तुम्हें सुमति दें।'' इतना कहना ही था कि उसका जीवन बदल गया। वह सचमुच एक साधु बन गया। अपना घर-परिवार छोड़कर साँई वसणशाह के दरबार में पानी

भरने की सेवा करने लगा।

अंतिम यात्रा

भरचूंढे के पीर के बेटे ने सक्खर की किसी हिन्दू नवयुवती के साथ छेड़खानी कर दी तो वहाँ के हिन्दू नवयुवकों ने उसी समय उसकी बुरी तरह पिटाई कर दी।

मुसलमानों ने फैसला किया कि : 'जिस तरह सक्खर के हिन्दुओं ने हमारे पीर के बेटे की पिटाई की है, उसका बदला हम उनके चहेते किसी पीर की जान लेकर ही चुकाएँगे।'

२६ अक्तूबर सन् १९३९ और शुक्रवार का दिन। रुड़की में वह उनका आखिरी दिन था। कीर्तन के लिए रुड़की से मांझादन गये। चार दिन बाद रुड़की आनेवाली गाड़ी में बैठे। बीच में रुड़की स्टेशन पर उतरकर दूसरी गाड़ी में अभी बैठे ही थे कि एक मुस्लिम बंदूकधारी ने उनके सिर के पीछे दो गोलियाँ दाग दी। साँईंजी के सिर से खून बहने लगा। वे 'राम' मंत्र उच्चारण करके सदा के लिए समाधिस्थ हो गये।

जिन महापुरुष की करुणा-कृपा से हजारों-लाखों लोग लाभान्वित हुए, उन्हें भी आख़िर शहीद होना पड़ा। ऐसे महापुरुष इस धरती से तो उठ जाते हैं, लेकिन उनके द्वारा प्रवाहित सत्संगरूपी ज्ञान की गंगा सैंकडों-हजारों वर्षों तक लोगों को पावन करती रहती है। यदि कोई उनके जीवनकाल में ही उनकी बातों को समझ जाये तो फिर कहना ही क्या ?

जिन अभागों ने ऐसे सत्पुरुष की हत्या की वे किन नीच योनियों में, नरकों में पच-मरते होंगे, अपने कुल-खानदान के साथ दोजख में होंगे या प्रेत होकर भटकते होंगे यह हमें पता नहीं लेकिन साँईं कँवररामजी की सुंदर सीख, नेक नसीहत, भगवद्भक्ति, परोपकारिता, नम्रता, सरलता, सहजता और प्रभु-प्रीति का सद्गुण अभी भी समाज के पास है। उन सत्पुरुष का शरीर नहीं है, लेकिन साँईं कँवररामजी का आदर्श जीवन और उनकी दिव्यता लाखों-लाखों सत्संगियों के पास है।

ईश्वरभक्त, गुरुभक्त साँईं कँवररामजी को शत-शत नमन ! [समाप्त]

*

'(अंग्रेजो !) अपना काला मुँह लेकर तुम्हें वापस जाना पड़ेगा...'

कलकत्ता के प्रसिद्ध तीर्थ कालीघाट में सायंकालीन आरती शुरू हुई। काशी से तीर्थयात्रा करके लौटी लगभग डेढ़ सौ साधुओं की मण्डली की 'अलख निरंजन' की गूँज से पूरा वातावरण गूँज उठा। पास में ही स्थित अंग्रेजों की छावनी में भी यह गूँज पहुँची।

सन् १८५७ की क्रांति समाप्त हो चुकी थी। भारत पर अब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर ब्रिटिश सरकार का शासन था। वारेन हेस्टिंग को पहला गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा गया था। शासन भले बदल गया था परन्तु अंग्रेजों की क्रूरता तो दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही थी।

कालीघाट के पास बनी इस छावनी में बैठे गोरों के लिए 'अलख निरंजन' की इस गूँज ने 'आँख में मिर्च' जैसा काम किया। उनका ऑफिसर सेना की एक टुकड़ी लेकर वहाँ पहुँचा और चिल्लाकर बोला : ''बंद करो यह शोरगुल और अपना समान उठाकर चलते बनो यहाँ से।''

आरती की धुन बंद हो गयी और सारा वातावरण नीरव शांति में डूब गया। इतने में फिर से गोरा अफसर चीख उठा : ''कौन है तुम्हारा मुखिया ?''

सभी साधुओं की दृष्टि मंदिर के अन्दर झाँकने लगी और तभी द्वार से बाहर निकली एक भव्य मूर्ति। कसा हुआ मजबूत शरीर, चमकती हुई बड़ी-बड़ी

आँखें और शरीर पर मात्र एक कौपीन ! मानो मनुष्य नहीं कोई तेज-पुंज हो। सभी उनकी ओर बस देख रहे थे बोलने की हिम्मत कोई नहीं जुटा पाया। उनकी आँखें चारों ओर दौड़ी और जाकर अंग्रेज़ अफसर पर टिक गयीं। ''भगवान् की आरती में बदतमीज़ी नहीं करनी चाहिये।'' उनके ये गम्भीर शब्द उस नीरवता में मानो चार-चाँद लगा गये। अब अंग्रेज अफसर ने भी कुछ कहने की हिम्मत जुटायी और बोला : ''जुबान बंद करो, जानते नहीं यह ब्रिटिश शासन है, तुम्हारा राज नहीं है...'' वह आगे कुछ कहता उससे पहले उन लंगोटधारी महापुरुष की वाणी कठोर हो उठी : ''भगवान् की आरती बंद करानेवाला तू कौन होता है ? मूर्ख !''

बस... अब वह गोरा आगे नहीं बोल पाया। वह बोलना चाहता था क्योंकि उसके पास बल था, सेना, बन्दूकें, तोपें थी परन्तु इन निहत्थे कौपीनधारी साधु के एक कठोर शब्द ने उसे ही निहत्था बना दिया। वह बिना कुछ बोले अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ वापस चला गया।

क्रोध से जलता, बेचैन बना हुआ वह अपनी छावनी में पहुँचकर तेजी से इधर-उधर टहलने लगा। मानो वह कुछ करना चाहता था परन्तु उसके वश में कुछ नहीं था। अब उसने शराब का सहारा लिया। एक के बाद एक गिलास गले से नीचे उतर गये परंतु वह अब भी उतना ही परेशान था। अंत में वह अकेला कालीघाट पर गया और उन कौपीनधारी महापुरुष के चरणों में गिर पड़ा। उसने इशारे से बताया कि : 'अब मैं बोल नहीं सकता, मेरी वाक्शक्ति नष्ट हो गयी है।'

करुणामय संत का हृदय पिघला और उन्होंने उसे उठाते हुए गम्भीर वाणी में कहा : ''जा बच्चा ! आज से किसी भक्त को कष्ट मत पहुँचाना।''

संत का बोलना पूरा हुआ और उसकी रोने की आवाज़ आने लगी। अब वह खुशी से झूम उठा। उसकी आँखें संत के तेजस्वी मुख मण्डल पर टिकीं, हाथ प्रणाम की मुद्रा में आ गये और मुख से निकला : ''ओह माई गॉड !''

गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग को जब यह समाचार मिला तो उसके अन्दर का शैतान नाचने लगा। उसने इस घटना को पूरी अंग्रेजियत का अपमान समझा। १८५७ की क्रांति को रौंदने में सफल होने के कारण उसके सिर पर अहं का भूत तांडव कर रहा था। उसने आदेश जारी कर दिया : ''ब्रिटिश ताकत से लोहा लेने की हिम्मत करनेवाले उस कौपीनधारी साधु को लकड़ियो के बीच जिन्दा जला डालो।''

वह स्वयं सेना लेकर कालीघाट पहुँचा साधुओं को ललकारते हुए कहा : ''कहाँ है तुम्हारा मुखिया ? आज हम उसे गिरफ्तार करके लकड़ियों के बीच जिन्दा जलायेंगे।''

वारेन हेस्टिंग की बात सुनते ही साधुओं के चिमटे और त्रिशूल खनखना उठे और 'अलख निरंजन' की गूँज से पूरा वातावरण काँप उठा। तभी साधुमण्डली के पीछे से आवाज आयी : 'ठहरो !' स्वर इतना तीव्र था कि अंग्रेजी सैनिकों और साधुओं का शोरगुल उसे सुनते ही शांत हो गया। सबकी निगाहें उस आवाज की दिशा में मुड़ गयीं। तभी साधुओं की टुकड़ी हाथ जोड़कर बीच में रास्ता बनाकर दो हिस्सों में खड़ी हो गयी और थोड़ी देर बाद वारेन हेस्टिंग को उनके बीच से एक कौपीनधारी, ताँबें के समान चमकते हुए गठीले शरीरवाले एक साधु आते हुए दिखे।

वारेन हेस्टिंग के सामने आकर उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को उसके चेहरे पर स्थिर कर दिया। कुछ ही क्षणों में बाहर से निहत्थे दिखने पर भी भीतर से अनंत शक्तियों के धनी वे अवधूत अपनी अवधूती में आ गये। उनका सौम्य चेहरा रक्तिम हो उठा और आँखों की पुतलियाँ कुछ ऊपर चढ़ने लगीं। वारेन हेस्टिंग की ओर इशारा करते हुए बोले :

''तेरी अंग्रेज सरकार भारत के आध्यात्मिक सामर्थ्य को देखना चाहती है ? तो देख ले।''

देखते-ही-देखते अंग्रेजी सिपाहियों ने वहाँ लकड़ियों का ढेर लगा दिया। वारेन हेस्टिंग सोच रहा था कि यह डर के मारे खुद ही जलने को तैयार हो गया। इस काण्ड से भारतीयों के मन में दहशत फैल जायेगी और फिर कोई हमसे विद्रोह करने की

हिम्मत नहीं करेगा।

चिता तैयार हो गयी और संत उस पर पद्मासन लगाकर बैठ गये। चारों ओर खड़ी और सीधी लकड़ियाँ रखकर उन्हें पूरी तरह से ढक दिया गया। बात हवा की तरह चारों ओर फैल गयी और इस दृश्य को देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो गयी। भारतवासी संतों के सामर्थ्य से परिचित थे अतः वे इन अवधूती संत की लीला देखने के लिए उत्सुक थे। वे जानते थे कि यह मूर्ख गोरा अपने पैरों को खुद ही काटने जा रहा है जबकि दूसरी तरफ वारेन हेस्टिंग अपनी जीत के दिवास्वप्न देख रहा था।

सैनिकों ने चिता को आग लगा दी और देखते-ही-देखते आग की लपटें गगनगामी हो गयीं। वारेन हेस्टिंग को इस पर भी संतुष्टि नहीं हुई। जैसे ही आग की लपटें कम होती वैसे ही वह ऊपर से और लकड़ियाँ डलवाता। इस प्रकार उसने कुल ९० मन लकड़ियाँ जला डाली। अब उसे पूरा विश्वास था कि साधु महाराज भस्म हो चुके होंगे और उसके पास लकड़ियाँ भी समाप्त हो चुकी थी।

काफी देर बाद आग की लपटें कम होने लगी। वारेन हेस्टिंग की नजरें चिता पर टिकी थीं। अचानक उसकी आँखें फटी-सी रह गयीं। उसने अपना सिर इधर-उधर हिलाया और आँखें मल-मलकर चिता की ओर देखने लगा। उसे जो दिख रहा था वह उसके लिए असम्भव जैसा था। अग्नि की धीमी लपटों के बीच संत मुस्कुरा रहे थे। वे जैसे अग्नि में नहीं अपितु मखमल के गद्दे पर बैठे हों। वारेन हेस्टिंग की 'काटो तो खून नहीं' जैसी हालत हो गयी। वह चीख उठा : ''इम्पॉसिबल...''

संत चिता से नीचे उतर गये और गवर्नर जनरल हेस्टिंग की ओर बढ़ने लगे। उसके पास अब एक ही रास्ता था-संत के चरणों में गिरकर अपने प्राणों की भीख माँगे और उसने किया भी वही।

भगवान् शंकर कहते हैं :

उमा संत की यही बड़ाई। मंद करत तेइ करत भलाई ॥

उन महापुरुष ने वारेन हेस्टिंग से कहा : ''जा मूर्ख! तुझे माफ करता हूँ लेकिन याद रखना जितने मन लकड़ियाँ तूने इस चिता में डाली उतने ही वर्षों में तुम्हें यहाँ से अपना काला मुँह लेकर वापस जाना पड़ेगा। इन लकड़ियों की तरह तुम्हारा राज्य भी समाप्त हो जायेगा। जैसे आग की यह ज्वाला मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकी, ऐसे ही तुम्हारे अत्याचारों की ज्वालाओं के बीच भी मेरे भारत का अस्तित्व जगमगाता रहेगा। एक दिन वह इसी तरह तुम्हारी गुलामी से बाहर निकलेगा जैसे मैं इस जलती चिता से निकला हूँ।''

वारेन हेस्टिंग ने इस घटना को 'लंदन टाइम्स' की लीथो कॉपी में छपवाया और इतिहास साक्षी है कि १८५७ के ठीक ९० वर्ष बाद सन् १९४७ को भारत आज़ाद हो गया।

भारतवर्ष के इन महान्‌योगी का नाम था 'संत आनंद भारती' जो इस घटना के बाद लोगों में 'लक्कड़ भारती' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सिद्धों के निवासस्थान गिरनार पर्वत की तलहटी में भवनाथ के समीप कुछ समय तक लोक-कल्याण करते हुए संत आनंद भारती ने यहीं पर जीवित समाधि ले ली। समाधि लेने से पहले वहाँ उपस्थित भक्त समुदाय को सम्बोधित करते हुए आपने कहा :

''अंग्रेजों को भारत से जाना ही पड़ेगा। यद्यपि आजादी के बाद भी देश में भारी उथल-पाथल होती रहेगी परन्तु इन सारे संकटों की आग में तपकर मेरे भारत का उज्ज्वल भविष्य उभरेगा और एक दिन विश्व का सिरमौर बनेगा।''

उनका पावन समाधिस्थल आज भी उनकी आध्यात्मिक शक्तियों का, उनके आत्मतेज का मूक गवाह बना हुआ है।

धन्य है भारत की धरा! धन्य है भारत की महान् संस्कृति! जिससे आकर्षित होकर ईश्वर तथा उनकी अभिन्न शक्तियाँ यहाँ विभिन्न रूपों में अवतरित होती हैं। इस भारतभूमि पर अपना विशेष अनुग्रह रखनेवाले ईश्वर तथा भगवत्प्राप्त सिद्ध महापुरुषों को हमारे कोटिशः नमन्...

आत्मसंयम

जिसने जीभ को नहीं जीता वह विषय-वासना को नहीं जीत सकता।

मन में सदा यह भाव रखें कि हम केवल शरीर के पोषण के लिये ही खाते हैं, स्वाद के लिये नहीं। जैसे पानी प्यास बुझाने के लिये ही पीते हैं वैसे ही अन्न केवल भूख मिटाने के लिये ही खाना चाहिये। हमारे माँ-बाप बचपन से ही हमें इसकी उलटी आदत डालते हैं। हमारे पोषण के लिए नहीं बल्कि अपना प्यार दिखाने के लिये हमें तरह-तरह के स्वाद चखाकर हमें बिगाड़ते हैं।

विषय-वासना को जीतने का रामबाण उपाय रामनाम या ऐसा कोई और मंत्र है। मुझे बचपन से रामनाम जपना सिखाया गया था, उसका सहारा मुझे मिलता ही रहता है। जप करते समय भले ही हमारे मन में दूसरे विचार आया करते हैं फिर भी जो श्रद्धा रखकर मंत्र का जप करता ही जायेगा उसे अंत में विघ्नों पर विजय अवश्य मिलेगी। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह मंत्र उसके जीवन की डोर बनेगा और उसे सभी संकटों से उबारेगा। इन मंत्रों का चमत्कार हमारी नीति की रक्षा करने में है और ऐसा अनुभव हरएक प्रयत्न करनेवाले को थोड़े ही दिनों में हो जायेगा। इतना याद रहे कि मंत्र तोते की तरह न रटा जाये। उसे ज्ञानपूर्वक जपना चाहिये। अवांछित विचारों के निवारण की भावना और मंत्र-शक्ति में विश्वास रखकर जो जीभ को वश में रखेगा, ब्रह्मचर्य उसके लिए आसान-से-आसान चीज हो जायेगा। प्राणीशास्त्र का अध्ययन करनेवाले कहते हैं कि पशु ब्रह्मचर्य का जितना पालन करता है मनुष्य उतना नहीं करता। हम इसके कारण की खोज करें तो देखेंगे कि पशु अपनी जीभ पर काबू रखता है, इरादा और कोशिश करके नहीं बल्कि स्वभाव से ही। वह जीने के लिए खाता है, खाने के लिए नहीं जीता पर हमारा रास्ता तो इसका उलटा ही है।

माँ बच्चे को तरह-तरह से स्वाद चखाती है, वह मानती है कि अधिक-से-अधिक चीजें खिलाना ही उसे प्यार करने का तरीका है। माँ-बाप हमारे शरीर को कपड़ों से ढकते हैं, कपड़ों से हमें लाद देते हैं, हमें सजाते-संवारते हैं, पर हम समझें कि कपड़े बदन को ढकने के लिए हैं, उसे सर्दी-गर्मी से बचाने के लिये हैं, सजाने के लिये नहीं तो हम इससे कहीं अधिक सुंदर बन सकते हैं।

स्वाद भूख में रहता है। भूखे को सूखी रोटी मे जो स्वाद मिलता है वह तृप्त को लड्डू में नहीं मिलता। हम तो पेट में ठूँस-ठूँसकर भरने के लिये तरह-तरह के मसाले काम में लाते हैं और विविध व्यंजन बनाते हैं फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य टिकता नहीं। जो आँखे ईश्वर ने हमें अपना स्वरूप देखने के लिए दी हैं उन्हें हम मलीन करते हैं। अश्लील उपन्यास, कुसाहित्य, अश्लील दृश्य, सिनेमा आदि देखने में लगाते हैं। जो देखने की चीजें हैं उन्हें देखने की रूचि नहीं है। शबरी भीलन ने जो देखा, मीरा ने जो देखा, ध्रुव-प्रह्लाद, सुलभा, महारानी मदालसा ने जो देखा और अपनी संतानों को दिखाया वह यदि आज का मानव देख ले तो स्वर्ग, वैकुंठ आदि कल्पना का विषय नहीं रहेगा बल्कि यहीं अभी स्वर्गीय सुख का उपभोग कर सकता है।

ईश्वर जैसा कुशल सूत्रधार दूसरा कोई नहीं मिल सकता और न आकाश से अच्छी दूसरी रंगशाला मिल सकती है, पर कौन माता बच्चे की आँखे धोकर उसे आकाश के दर्शन कराती है ? बच्चे की प्रथम पाठशाला घर ही है। आजकल घरों में बच्चों को जाने-अनजाने जो शिक्षा मिल रही है वह उसके तथा माता-पिता के भविष्य व राष्ट्र के लिए कितना घातक है। यह विचारणीय है। देश के बुद्धिजीवियों व कर्णधारों को गंभीरतापूर्वक इस विषय पर विचार करना चाहिये।

-महात्मा गाँधी
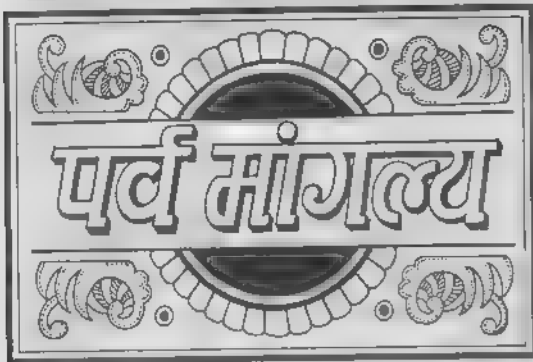
चेटीचण्ड : झूलेलाल अवतरण दिवस

⁂ साँई के सत्संग-प्रवचन से ⁂

अवतार का अर्थ क्या है ? '**अवतरति इति अवतारः**।' जो अवतरण करे, जो ऊपर से नीचे आये। कहाँ तो परात्पर परब्रह्म, निर्गुण, निराकार, सत्-चित्-आनंदस्वरूप, अव्यक्त, अजन्मा... और वह जन्म लेकर आये! अव्यक्त व्यक्त हो जाये! अजन्मा जन्म को स्वीकार कर ले, अकर्त्ता कर्त्तव्य को स्वीकार कर ले। यह अवतार है। जो शुद्ध-बुद्ध निराकर हो वह साकार हो जाये... यह अवतार है।

अवतार क्यों होता है ? जीव का जीवन सर्वांगीण विकसित हो इसलिये भगवान् के अवतार होते हैं। उस समय उन अवतारों से तो जीव को प्रेरणा मिलती ही है, हजारों, वर्षों के बाद भी प्रेरणा मिलती रहती है।

ईश्वर के कई अवतार माने गये हैं : नित्य अवतार, नैमित्तिक अवतार, आवेश अवतार, प्रवेश अवतार, आयुध अवतार, आविर्भाव अवतार, अंशावतार, अन्तर्यामी अवतार, प्रतीक अवतार, विभूति अवतार, प्रेरणा अवतार आदि।

जब किसी निमित्त को लेकर परब्रह्म परमात्मा का अवतार होता है तो उसे नैमित्तिक अवतार कहते हैं। भगवान् झूलेलाल का अवतार भी धरा पर धर्म स्थापना के निमित्त हुआ था।

सिंध की राजधानी थी नगरसमै (वर्तमान नगरठट्टा)। सिंध में मरखशाह नामक महत्त्वाकांक्षी, धर्मांध और अनाचारी राजा का राज्य था। उसने हिन्दू जाति को समाप्त करने के लिये कई दाँव आजमाये। एक दिन उसने फरमान निकाला कि : "या तो तुम लोग इस्लाम धर्म को अंगीकार करो या तुम जिसे भगवान् कहकर पूजा-इबादत करते हो उसका साक्षात्कार कराओ।"

इस आदेश से सारी हिन्दू जाति प्रकंपित हो उठी, समस्त महाजन मंडलियों में खलबली मच गई। "अब क्या किया जाये ?" इस सोच-विचार के अंत में नगर समै की महाजन मण्डली ने एक उपाय यह सुझाया कि इस आतंक से बचने के लिए अन्तिम उपाय यह है कि : सभी लोग सिंधुसागर तट पर एकत्र हों और दरियालाल की आराधना करें। इस निर्णय के कारण वजीर आहा से, जवाब प्रस्तुत करने के लिए आठ दिन का समय लिया गया। फिर 'या तो करेंगे, या मरेंगे' के दृढ़ निश्चय के साथ अपार हिन्दू जनता सिंधुसागर-तट पर उमड़ पड़ी।

तीन दिन तक भूख-प्यास सहते हुए सब प्रार्थना करते रहे। कहते हैं कि :

सच्चे हृदय की प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
भक्तवत्सल के कान में वह पहुँच झट ही जाय है।

भक्तों की करुण पुकार सुनकर सागर देवता का हृदय डोला, सिंधु के जल में एक खलबली मच गयी। एक तेज प्रकाश-पुंज में वे निराकार ब्रह्म अपना अव्यक्त रूप व्यक्त करते हुए बोले :

"हिन्दू भक्तजनो ! तुम सभी अब अपने-अपने घरों की ओर लौट जाओ। तुम्हारा संकट दूर हो, इसके लिए मैं शीघ्र ही नसरपुर में अवतार लेने जा रहा हूँ। फिर मैं सभी को धर्म की सच्ची राह दिखाऊँगा। इसलिए निश्चिंत मन से सभी जहाँ से आये हो वहाँ वापस लौट जाओ, पर अपने धर्म को सदा पकड़े हुए आगे बढ़ना।"

आकाशवाणी सुनकर सभी हर्ष विभोर होकर नगर की ओर लौट पड़े। सप्ताह भर में ही नसरपुर में ठक्कर रत्नराय के यहाँ माता देवकी के गर्भ से एक बालक ने अवतार लिया। वह पावन दिवस था संवत् ११९७ के चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वितीया का, जिसे आज भी 'चेटीचण्ड' के रूप में मनाया जाता है।

नसरपुर में जन्मे इस बालक को देखने के लिये

मरखशाह की आज्ञा से उसका वज़ीर आहा आ पहुँचा। वज़ीर को ठाट-बाट में अपने द्वार पर आया देख ठक्कर रत्नराय के हर्ष की सीमा न रही। उसने वज़ीर का खूब स्वागत किया। वजीर के कहने पर पालने में सोते हुए नन्हे कन्हैया को आनंद से उमंगित होकर ला बताया।

जैसे पूतना स्तन पर जहर लगाकर आयी थी ऐसे ही वजीर आहा गुलाब के फूल में जहर लाया था। उस मनोहर बालक के अलौकिक रूप पर टकटकी लगाये घड़ी भर आहा देखता ही रह गया। वह देखता क्या है कि घड़ी भर में पहलेवाला बालक बदल रहा है, उसे लगा मानो कोई दस वर्षीय रूपवान किशोर हो। इतने में पुनः वही बालक मूंछ-दाढ़ीयुक्त मध्यम वय के एक आकर्षक पुरुष-सा जान पड़ा। वह विचारों की उधेड़बुन में पड़ा ही था कि वही स्वरूप बूढ़े आदमी में परिवर्तित हो, पुनः पालने पर झूलते हुए बालक के रूप में दिखाई देने लगा। इस अद्‌भुत दृश्य को देख आहा भीतर-ही-भीतर चकित हो उठा। उसे यकीन हो गया कि ठक्कर रत्नराय के यहाँ आकाशवाणी के अनुसार दिव्य पुरुष ने अवतार ले लिया है। उसने रत्नराय से कहा : ''तुम्हे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है, इसे सुनकर शाह अत्यंत खुश हुए हैं। वे तुम्हारे इस बालक को देखना चाहते हैं।''

इस आदेश को सुनते ही रत्नराय काँप उठे। उन्हें शाह की अनाचारी नीतियों का पूरा पता था। वह कंस की याद ताजी करानेवाला कमबख्त था। फिर भी उन्होंने हिम्मत-धारण करते हुए कहा :

''इतने छोटे बच्चे को लेकर इतनी दूर आना अभी कैसे संभव है ? उसे कुछ बड़ा हो जाने दो। फिर हाजिर हो जाऊँगा।''

''अच्छा। तो ऐसा ही करो, पर एकाध महीने में शाह के सम्मुख हाज़िर हो जाना, नहीं तो फिर तुम जानते ही हो...।'' यह कहकर दल-बल के साथ वज़ीर उलझनों में डूबता उतरता नगर समै की तरफ चल पड़ा। नगर के समीप पहुँचते ही उसे एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई दिया। सिंधु-सागर के मध्य से निकलकर रत्नराय का बच्चा ठीक उसी तरफ बढ़ता चला आ रहा है। वह अकेला ही नहीं है, उसके पीछे युद्ध के वाद्य बजाती विशाल सेना भी चली आ रही है। इस दृश्य को देख आहा भय से काँप उठा। उसके होश-हवाश उड़ गये। ''क्या यह सच है ? नहीं, नहीं भ्रम है।'' मन की इस द्विविधा में उसका हाथ बंदगी की मुद्रा में जुड़ गया। इतने में देखता क्या है कि वह बालक 'लाल उदयराज' उसके पास आकर खड़ा है। उसे अपने इतने समीप आया देख आहा ने बड़ी नरमी से निवेदन किया : ''हे अवतारी ! हे औलिया महापुरुष ! मैं तो अकेले आपको पकड़कर शाह के सामने हाजिर करने को आया था। कृपा करके आप अपनी सेना को विदा कर दें।''

''तेरी यह इच्छा है तो एवमस्तु। मैं अकेले ही तेरे शाह के पास चलता हूँ।'' यह कहते हुए बालक लाल उदयराज एकाएक अदृश्य हो गया। उसके जाते ही क्षणमात्र में विशाल सेना भी कहीं अलोप हो गई।

इस दृश्य की अनुभूति से काँपता हुआ आहा सीधा अपने घर पहुँचा, परंतु देर रात तक उसे नींद न आई, इस सोच में कि मरखशाह को क्या जवाब दें ? सारी रात इसी उधेड़बुन में छटपटाता रहा। सवेरा होते ही वह शाही महल में पहुँचा। देखा तो, रात्रि-जागरण से मरखशाह की हालत भी खिन्न और थकित जान पड़ी। आहा को देखते ही वह खुल पड़ा : ''आहा ! तू नसरपुर भले जा आया, परंतु तुझसे पहले ही वह बालक कल रात शाही महल में आ पहुँचा था।''

शाह की बातें सुन आहा चकित हो कहने लगा : ''यह तो बड़ी ही हैरतअंगेज दास्तान मानी जायेगी ! फिर क्या हुआ जहाँपनाह ?''

''हुआ यह कि पहले मैंने उसे रोकने के लिए पहरेदारों को हुक्म दिया, पर वह बालक किसी तरह भी हाथ न आया। सैनिक हैरान-परेशान हो गये। बालक के भाँति-भाँति के रूप और चमत्कार को देख मैं भी चकित हो गया। मुझे लगा कि यह तो किसी पीर का भी पीर, औलिया ही है। फिर तो मैं दीन स्वर में बिनती करते हुए उससे बोला :

''हे पीरों-के-पीर ! इस बन्दे पर रहम करो और सारे हिन्दुओं को ऐसी नसीहत कर दो कि वे लोग इस्लाम धर्म को अपना लें, जिससे मुझे उन पर जुल्म न करना पड़े।'' तत्पश्चात् सिर हिलाकर शांत हो उस बालक ने कहा : ''रे मरखशाह ! धर्म चाहे कोई भी हो, सभी, उच्छृंखल मानवजात को नियंत्रित करने के लिए हैं, परमात्मा में लगाने के लिए हैं। तुम्हारी नजर में चाहे उनमें फ़रक मालूम पड़े, पर ईश्वर कहो या खुदा कहो, उसकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान भिन्न-भिन्न नहीं हैं। जैसे एक ही नगर में जाने के रास्ते भिन्न-भिन्न होते हैं, जो चाहे जिस मार्ग से नगर में दाखिल हो सकता है। ठीक उसी प्रकार ये भिन्न-भिन्न धर्म परमात्मा के नगर में ले जानेवाले भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।

तुम यदि कुरानेशरीफ से कायल हो तो उसे ही याद करो, उसमें क्या लिखा है ? उसमें तो स्पष्ट आदेश दिया है कि : 'सभी पदार्थों में ईश्वर को देखो, पहचानो। उसके मुताबिक सभी मनुष्य खुदा के बंदे हैं यह मानकर सबके साथ भाई जैसा व्यवहार करो। अत्याचार छोड़ हृदय में दयाभाव भरकर अपना राज-धर्म संभालो और सभी को उनके अपने-अपने धर्म के मुताबिक चलने की इज़ाजत दो।''

इस प्रकार उस औलिया की वाणी सुन मेरी आँखें उघड़ गई। मैंने हाथ जोड़ दीन भाव से उससे निवेदन किया कि : ''ऐ मालिक ! तुमने जैसा उपदेश दिया है, मैं अबसे वैसा ही करूँगा और अत्याचार का मार्ग त्यागकर सभी हिन्दुओं को मैं भाई जैसा मानूँगा।''

मेरी दीन वाणी को उस औलिया ने चुपचाप सुना और 'तथास्तु' कह एकाएक विदा हो गया।'' इतना कहने के बाद मरखशाह थोड़े समय तक अवाक्-सा चुप बना रहा, फिर कुछ सोचकर आहा की ओर देखते हुए हुक्म देने की अदा में बोल उठा :

''आहा ! जो हुआ सो हुआ। अब इस बात का किसीसे जिक्र तक नहीं करना, नहीं तो अपनी ही बदनामी होगी। हिन्दू भले ही अपने धर्म का पालन करें, हमें किसीकी राह का रोड़ा नहीं बनना है। यह मेरा हुक्म है, इतना ध्यान रखना।''

मरखशाह की बात सुनकर आहा चकित हो गया। क्षणभर तो विचारों में डूब गया। क्या कहे कुछ समझ ही न पाया। 'जैसा जहाँपनाह का हुक्म' मात्र इतना कह शाही महल से अपना-सा मुँह लेकर वापस लौट गया।

यह घटना घटे काफी दिन बीत चले थे कि शाह और वजीर को शांत देख हिन्दुओं ने आश्चर्य के साथ-साथ शांति की साँस ली। महाजन मँडलियों ने यह माना कि उनके ऊपर छाये हुए संकटों से प्रत्यक्षदेव श्री दरियालाल ने हम सभी को उबार लिया है। उन्हीं, दरियालाल को हिन्दू लोग 'झुलेलाल' के रूप में पूजते हैं और मुसलमान उन्हीं के प्रति 'जिन्दपीर' के रूप में अपनी भव्य बंदगी अदा करते हैं।

झूलेलाल-अवतरण दिवस मानव को पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा देता है। जुल्मी के आगे झुको मत, अपितु अपने धर्म पर डटे रहो। साहसी बनो, एकांत, मौन व ईश्वर-आराधना से अपने आत्मिक बल का अवतरण होने दो। जैसे सिंधी भाइयों ने जप, उपवास, ध्यान और तप-तेज से जुल्मी-जालिम मूर्ख की मुरादें नाकामयाब कर दीं। ऐसे ही आपके जीवन में भी नीच मुरादें मनवाने का कोई साहस न करे। अगर कोई दुस्साहस करता है तो आप भी अपना तप-तेज, व्रत-उपवास, जप व ध्यान का आश्रय लेकर मलिन मुरादवालों के ख्वाब धूल में मिला दें और अपनी नेक मुराद रखकर गीता-ज्ञान के प्रकाश में जियें।

कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा। सदा प्रेम के गीत गाता चला जा॥
तेरे मार्ग में वीर ! काँटे बड़े हैं। लिये तीर हाथों में वैरी खड़े हैं॥
बहादुर सबको मिटाता चला जा। कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा॥
तू है आर्यवंशी ऋषिकुल का बालक। प्रतापी यशस्वी सदा दीनपालक॥
तू सन्देश सुख का सुनाता चला जा। कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा॥
भले आज तूफान उठ करके आयें। बला पर चली आ रही हों बलाएँ॥
युवा वीर है दनदनाता चला जा। कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा॥
जो बिछुड़े हुए हैं उन्हें तू मिला जा। जो सोये पड़े हैं उन्हें तू जगा जा॥
तू आनन्द डंका बजाता चला जा। कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा॥

*

एकादशी माहात्म्य

[वरूथिनी एकादशी : १९ अप्रैल २००१]

युधिष्ठिर ने पूछा : ''हे वासुदेव ! वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ? कृपया उसकी महिमा बताइए।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''राजन् ! वैशाख (गुजरात-महाराष्ट्र के मुताबिक चैत्र) कृष्ण पक्ष की एकादशी 'वरूथिनी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह इस लोक और परलोक में भी सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। 'वरूथिनी' के व्रत से सदा सुख की प्राप्ति और पाप की हानि होती है। 'वरूथिनी' के व्रत से ही मान्धाता तथा धुन्धुमार आदि अन्य अनेक राजा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए हैं। जो फल दस हजार वर्षों तक तपस्या करने के बाद मनुष्य को प्राप्त होता है, वही फल इस 'वरूथिनी' एकादशी का व्रत रखने मात्र से प्राप्त कर लेता है। नृपश्रेष्ठ ! घोड़े के दान से हाथी का दान श्रेष्ठ है। भूमिदान उससे भी बड़ा है। भूमिदान से भी अधिक महत्त्व तिल्दान का है। तिलदान से बढ़कर स्वर्णदान और स्वर्णदान से बढ़कर अन्नदान है, क्योंकि देवता, पितर तथा मनुष्यों को अन्न से ही तृप्ति होती है। विद्वान् पुरुषों ने कन्यादान को भी इस दान के ही समान बताया है। कन्यादान के तुल्य ही गाय का दान है, यह साक्षात् भगवान का कथन है। इन सब दानों से भी बड़ा विद्यादान है। मनुष्य वरूथिनी एकादशी का व्रत करके विद्यादान का भी फल प्राप्त कर लेता है। जो लोग पाप से मोहित होकर कन्या के धन से जीविका चलाते हैं, वे पुण्य का क्षय होने पर यातनामय नरक में जाते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके कन्या के धन से बचना चाहिए, उसे अपने काम में नहीं लाना चाहिए। जो अपनी शक्ति के अनुसार अपनी कन्या को आभूषणों से विभूषित करके पवित्र भाव से कन्या का दान करता है, उसके पुण्य की संख्या बताने में चित्रगुप्त भी असमर्थ हैं। वरूथिनी एकादशी करके भी मनुष्य उसी के समान फल प्राप्त करता है।

व्रत करनेवाला वैष्णव पुरुष दशमी तिथि को काँस, उड़द, मसूर, चना, कोदो, शाक, मधु, दूसरे का अन्न, दो बार भोजन तथा मैथुन - इन दस वस्तुओं का परित्याग कर दे।

एकादशी को जुआ खेलना, नींद लेना, पान खाना, दातुन करना, दूसरे की निन्दा करना, चुगली, चोरी, हिंसा, मैथुन, क्रोध तथा असत्य भाषण - इन ग्यारह बातों को त्याग दें। द्वादशी को काँस, उड़द, शराब, मधु, तेल, पतितों से वार्तालाप, व्यायाम, परदेश-गमन, दो बार भोजन, मैथुन, बैल की पीठ पर सवारी और मसूर - इन बारह वस्तुओं का त्याग करें।

राजन् ! इस विधि से वरूथिनी एकादशी की जाती है। रात को जागरण करके जो भगवान मधुसूदन का पूजन करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो परमगति को प्राप्त होते हैं। अतः पापभीरु मनुष्यों को पूर्ण प्रयत्न करके इस एकादशी का व्रत करना चाहिए। यमराज से डरनेवाला मनुष्य अवश्य 'वरूथिनी' का व्रत करे। राजन् ! इसके पढ़ने और सुनने से सहस्र गोदान का फल मिलता है और मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है।'' *['पद्म पुराण' से]*

[सुज्ञ पाठक इसको पढ़ें-सुनें और गौदान का पुण्यलाभ प्राप्त करें।]

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यो के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०२वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अप्रैल २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

लू : कारण तथा बचाव के उपाय

गर्मी के दिनों में गरम हवा चलती है उसे 'लू' कहते हैं। लू लगने से चेहरा लाल हो जाता है, नब्ज तेज चलने लगती है। साँस लेने में कष्ट होता है, त्वचा शुष्क हो जाती है। प्यास अधिक लगती है। कई बार सिर और गर्दन में पीड़ा होने लगती है। कभी-कभी प्राणी मूर्च्छित भी हो जाता है तथा उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

लू से बचाव के उपाय : लू चलने के दिनों में पानी अधिक पीना चाहिए। **सुबह ७०० मि.ली. से सवा लिटर पानी पीनेवालों को लू लगने की संभावना नहीं होती।** घर से बाहर जाते समय कानों को रूमाल से ढँक लेना चाहिए। जब गर्मी अधिक पड़ रही हो तब मोटे, सफेद और ढीले कपड़े पहनने चाहिए। दिन में दो बार नहाना चाहिए। एक सफेद प्याज हमेशा साथ रखने से लू लगने की सम्भावना नहीं रहती। प्याज और पोदीना लू लगने के खतरे से रक्षा करते हैं। नींबू का शरबत पीना हितकर होता है।

तक्र (छाछ) :

दूध में जोरन डालने से दही के जीवाणु बड़ी तेजी से बढ़ने लगते हैं और वह दूध ४-५ घंटों में ही जमकर दही बन जाता है। दही में पानी डालकर मथने पर मक्खन अलग करने से वह छाछ बनता है। छाछ न ज्यादा पतली हो, न ज्यादा गाढ़ी। ऐसी छाछ दही से ज्यादा गुणकारी होती है। यह रस में मधुर, खट्टी, कसैली होती है और गुण में हल्की, गरम तथा ग्राही होती है।

छाछ गरम, कसैली, मधुर और पचने में हल्की होने के कारण कफनाशक और वातनाशक होती है। पचने के बाद इसका विपाक मधुर होने से पित्तप्रकोप नहीं करती।

भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वैद्यस्य किं प्रयोजनम्।

'भोजन के बाद छाछ पीने पर वैद्य की क्या आवश्यकता है ?'

छाछ भूख बढ़ाती है और पाचनशक्ति ठीक करती है। यह शरीर और हृदय को बल देनेवाली तथा तृप्तिकर है। कफरोग, वायुविकृति एवं अग्निमांद्य में इसका सेवन हितकर है। वातजन्य विकारों में पीपर व सेंधा नमक मिलाकर, कफ-विकृति में अजवायन, सोंठ, काली मिर्च, पीपर व सेंधा नमक मिलाकर तथा पित्तज विकारों में काली मिर्च व मिश्री मिलाकर छाछ का सेवन करना लाभदायी है। संग्रहणी, अर्श में सोंठ, काली मिर्च और पीपर समभाग लेकर बनाये गये १ ग्राम चूर्ण को २०० मि.ली. छाछ के साथ लें।

सावधानी : मूर्च्छा, भ्रम, दाह, रक्तपित्त व उरःक्षत विकारों में छाछ का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गर्मियों में छाछ नहीं पीनी चाहिए। यदि पीना ही हो तो अजवायन, जीरा और मिश्री डालकर पियें।

※

संतकृपा नेत्रबिंदु

※ आँखों की समस्त बीमारियों में लाभकारी औषधि सिद्ध हुई है।

※ इसके प्रयोग से आँख आना, आँखों में खुजली, लाली, रोहे आदि रोग ठीक हो जाते हैं।

※ इसके लगातार इस्तेमाल करने से सफेद व काला नाखूना साफ हो जाता है। आँखों की ज्योति बढ़ती है।

※ आँखों की कमजोरी दूर होगी। चश्मा लगना भी छूट जायेगा। इस दवा को छोटे बच्चे भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

※ यह औषधि योगी महात्माओं द्वारा बताये हुए तरीके से शुद्ध गंगाजल व गुलाब के फूल तथा अन्य आयुर्वेदिक दवाइयों द्वारा तैयार की जाती है।

प्रयोग विधि : दवाई डालने से पहले आँखों को ठंडे पानी से धोकर साफ करके तौलिये से पोंछ कर दवाई डालें, तो फिर उन्हें जल्द लाभ होगा।

आँखों में एक-से-दो बूँद डालकर ढक्कन लगाकर शीशी को ठंडे स्थान पर रखें। १-१ बूँद प्रातः व सायं इस्तेमाल करें।

यह औषधि 'ऋषि प्रसाद' के हर सदस्य को निःशुल्क दी जायेगी। सेवाधारियों द्वारा 'ऋषि प्रसाद' प्राप्त करनेवाले सदस्य उन्हीं से तथा अन्य सदस्य अपने नजदीक के ऋषि प्रसाद कार्यालय से प्राप्त करें। १५-१६ लाख साधकों तक यह नेत्र-बिन्दु पहुँचने तक कुछ समय धीरज रखनी पड़ेगी।

- वैद्यराज अमृत भाई, वैद्य विनोद भाई, डॉ. कुलवंत राय गोयल

*

गोमूत्र अर्क

धर्मशास्त्रों में गोमूत्र को अति पवित्र माना गया है। गोमूत्र का छिड़काव वातावरण को शुद्ध एवं पवित्र बनाता है। आज का विज्ञान भी आविष्कार करके गोमूत्र को कीटाणुनाशक बताता है।

देशी गायों का गोझरण से बना गोअर्क सुबह-शाम २-२ चम्मच पानी के साथ लेने से निम्नोक्त सभी रोगों में फायदा करता है। स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए निरोगी व्यक्ति भी इसका सेवन कर सकते हैं। संत श्री आसारामजी गौशाला निवाई में ३००० गायें अकाल के समय सेवा के लिये रखी गईं। उनके गौझरण से गौअर्क बनाया जा रहा है जो स्वास्थ्य के लिये वरदानस्वरूप सिद्ध हो रहा है।

उपयोग : कफ एवं वायु के रोग (जैसे कि सर्दी, खाँसी आदि), पेट के रोग, गैस, अग्निमांद्य, आमवात, अजीर्ण, आफरा, संग्रहणी, लिवर के रोग, पीलिया (कामला), प्लीहा के रोग, किडनी (मूत्रपिंड) के रोग, प्रोस्टेट, मूत्राशय के रोग (पेशाब का रुक जाना), बहुमूत्रता, स्त्रीरोग, सूज़ाक (गोनोरिया), चमड़ी के रोग, सफेद दाग, शोथ, कैन्सर, मधुप्रमेह (डायबिटीज), क्षय रोग (टी. बी.), गले की गाँठें, जोड़ों का दर्द, गठिया, बदन दर्द, कृमि, बच्चों के रोग, कान के रोग, सिर में रूसी, सिरदर्द आदि में उपयोगी है।

मात्रा : १० मि.ली. से ३० मि.ली. पानी मिलाकर।

[साँई श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत।]

पूज्यश्री की तस्वीर से मिली प्रेरणा

सर्वसमर्थ परम पूज्य श्री बापूजी के चरणकमलों में मेरा कोटि-कोटि नमन...

१९८४ के भूकंप से संपूर्ण उत्तर बिहार में भारी नुकसान हुआ था जिसकी चपेट में हमारा घर भी था। परिस्थितिवश मुझे नौवीं कक्षा से ही पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। किसी मित्र की सलाह से नौकरी ढूँढने के लिए दिल्ली गया लेकिन वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। दो दिनों का भूखा तो था ही, ऊपर से नौकरी की चिंता। अतः **आत्महत्या का विचार करके** रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़ा।

रानीबाग बाजार में एक दुकान पर पूज्यश्री के सत्साहित्य, कैसेट आदि रखे हुए थे एवं साथ ही पूज्यश्री की बड़े आकार की तस्वीर भी टँगी थी। पूज्यश्री की आशीर्वाद की मुद्रा में हँसती हुई उस तस्वीर पर मेरी नज़र पड़ी तो फिर १० मिनट तक मैं वहीं सड़क से ही खड़े-खड़े उसे देखता रहा।

उस वक्त न जाने मुझे क्या मिल गया! काम भले मजदूरी का ही करता हूँ लेकिन तबसे लेकर आज तक, चित्त में बड़ी प्रसन्नता बनी रहती है।

न जाने मेरी जिंदगी की क्या दशा होती अगर पूज्य बापूजी की **'यौवन सुरक्षा'**, **'ईश्वर की ओर'**, **'निश्चिंत जीवन'** पुस्तकें और **'ऋषि प्रसाद'** पत्रिका हाथ न लगती! पूज्यश्री की तस्वीर से मिली प्रेरणा एवं उनके सत्साहित्य ने मेरी डूबती नैया को मानों, मझधार से बचा लिया है।

यह सब पूज्यश्री की कृपा एवं आशीर्वाद का ही प्रभाव है। धनभागी हैं साहित्य की सेवा करनेवाले जिन्होंने मुझे आत्महत्या के पाप से बचाया।

- महेश शाह
नारायणपुर, डुमरा, जि. सीतामढ़ी (बिहार).

जींद (हरियाणा) : २६ फरवरी से १ मार्च। चार दिवसीय गीता-भागवत सत्संग समारोह संपन्न हुआ। प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी ने प्रवचन किया। साधन का संकेत करते हुए उन्होंने बताया कि : ''हमारा मन भवरे की तरह है जो संसार का रस पाने की इच्छा से इधर-उधर भटकता रहता है । यदि उसे एक बार सद्‌गुरु-कृपा का रस मिल जाये तो फिर उसे नाशवान् सांसारिक पदार्थ आकर्षित नहीं कर सकेंगे। जिस प्रकार धूप से बचने के लिए छाता चाहिये वैसे ही सांसारिक त्रितापों से बचने के लिए सद्‌गुरु-कृपा चाहिये।''

मनुष्य को पाशवीय, मानवीय व ईश्वरीय तत्त्व का मिश्रण बताते हुए तत्त्ववेत्ता पूज्य बापू ने कहा कि : **''सत्संग, जप-ध्यान, व्रत-उपवास से ईश्वरीय तत्त्व का विकास होता है। मनुष्य में ईश्वरीय अंश विकसित होने पर परोपकार, समता, नम्रता, प्रसन्नता, उदारता आदि दिव्य गुण स्वाभाविक ही आ जाते हैं।''**

रोहतक (हरियाणा) : १ से ४ मार्च। प्रथम दो दिन पूज्य बापूजी के कृपापात्र शिष्यों का व अंतिम दो दिन पूज्यश्री का सत्संग-प्रवचन संपन्न हुआ । संत श्री आसारामजी आश्रम, बोहर में पूज्यश्री ठहरे। ग्रामवासी पूज्य बापू को अपने करीब पाकर बड़े आनंदित हुए।

सूरत (गुज.) : ८ से ११ मार्च । चार दिवसीय होलिकोत्सव ध्यानयोग साधना शिविर व पूर्णिमा दर्शनोत्सव संपन्न हुआ । ८ मार्च का दिन विद्यार्थियों के लिये था। हजारों छात्र-छात्राओं को उज्ज्वल जीवन की कुंजियाँ बतायी गयीं एवं याददाश्त बढ़ाने के प्रयोग कराये, उनमें सद्‌गुण-सदाचार का सिंचन किया गया।

पूज्य बापू ने अपनी ओजमयी वाणी में कहा कि : **''तुम्हारे भीतर जबरदस्त शक्ति का भण्डार छुपा हुआ है। योगी जिसे तीसरा नेत्र व आज्ञाचक्र कहते हैं, वैज्ञानिक जिसे पीनियल ग्रंथी कहते हैं उसका ध्यान-योग से विकास किया जा सकता है। आप भ्रूमध्य में स्थित अपना तीसरा नेत्र खोल सकते हैं, परमात्मा के सामर्थ्य को अपने में विकसित कर सकते हैं।''**

ऐसा कौन-सा एक स्थान है जहाँ लाखों की संख्या में लोग भारतीय संस्कृति के अनुरूप होलिकोत्सव मनाने के लिए एकत्रित होते हैं ? जिन्होंने इस उत्सव को देखा है, लाभान्वित हुए हैं ऐसे लाखों लोग एक स्वर में कह उठेंगे- संत श्री आसारामजी आश्रम, सूरत । इस महोत्सव का नज़ारा ही कुछ ऐसा होता है कि नजरें बदल जाती हैं। जगत को देखने की एक नज़र मिल जाती है।

नजरें बदली तो नजारे बदले। किश्ती ने बदला रूख तो किनारे बदले॥

तापी का तट ... पूनम का दिन... होली का उत्सव और पूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु का सान्निध्य... इस चतुर्वेणी संगम में लाखों आत्म-कल्याणेच्छुक साधक-साधिकाओं ने अवगाहन किया।

देश-भर में कितने लोगों ने रासायनिक रंगों से अपने स्वास्थ्य की हानि की- यह हमने नहीं देखा । कितने लोग शराब के नशे में डूबे- यह हमने नहीं देखा। लेकिन लाखों लोगों को यहाँ पलाश के फूलों से निर्मित, गंगा जल मिश्रित प्राकृतिक रंगों से होली खेलते हुए देखा, ध्यान, ज्ञान व हरिनाम के नशे में डूबते हुए देखा !

उल्लेखनीय है कि इन दिनों उक्त रंगों के शरीर पर पड़ने से उसमें गर्मी सहन करने की शक्ति बढ़ती है तथा मानसिक संतुलन बना रहता है।

प्रत्येक शिविरार्थी को घर ले जाने के लिए उक्त प्राकृतिक रंगों से भरा एक पाउच निःशुल्क दिया गया ताकि उनके जो ईष्ट मित्र, सगे-संबंधी यहाँ शामिल न हो सके वे भी लाभान्वित हों । आज तक हुए होलिकोत्सव शिविरों की अपेक्षा इस वर्ष सबसे अधिक जनमेदनी का आगमन हुआ ।

एक ओर खचाखच भरे विशाल सत्संग-भवन में श्री सुरेशानंदजी का प्रवचन चालू था तो दूसरी ओर होलिकोत्सव मैदान में पूज्य बापू व श्री नारायण साँई के सान्निध्य में भी खचाखच जनमेदनी मौजूद थी तीसरी ओर विशाल अन्नपूर्णा भवन में भोजनशाला भी चालू थी। इस प्रकार विशाल भीड़ को तीन कार्यक्रमों में बाँटकर व्यवस्था सुंदर बनायी गयी।

सूरत यातायात विभाग ने इस कार्यक्रम के कारण कुछ रास्ते को 'एकतरफा मार्ग' किया। उनका कहना था कि आज तक सूरत में इतनी सारी बसें कभी भी कहीं भी नहीं लगायी गयीं।

दक्षिण गुजरात का एक प्रसिद्ध दैनिक कहता है :

भगवद्‌शांति और आनन्द के लिए जो कर्म किया जाता है वह पुरुषार्थ है : आशारामजी बापू

सूरत, रविवार : शहर के एक तरफ तापी तट पर

संत श्री आसारामजी आश्रम में होली-धूलेंडी पर्व पर आयोजित ध्यान योग साधना शिविर की पूर्णाहुति करते हुए पूज्य बापू ने कहा था कि : ''स्वभाव बदलना यह मानव के हाथ की बात है।''

जहांगीरपुरा आश्रम में होली-धूलेंडी पर्व पर चार-पाँच लाख भक्तों को बापूजी ने सफल जीवन की कुँजियाँ बतायी।

मनुष्य का मन ही सुख-दुःख, शांति-अशांति, लाभ-हानि, स्वर्ग-नरक की कल्पना करता है और उसी प्रकार की सृष्टि का सर्जन करता है। इसीलिए ऐसे मन को वश करने का प्रयास करना यही पुरुषार्थ है। सहज कर्म कर्मयोग के द्वारा भगवान के आनन्दस्वरूप का दर्शन कराएँगे। होली-धूलेंडी उत्सव मनाने के लिए व्यवस्था हेतु बनायी गई 'रेलिंग', उमड़ी हुई विशाल जनमेदिनी के कारण टूट गयी।

धूलेंडी निमित्त पूज्य बापू ने केसूड़े के फूलों से बने हुए रंग और गंगाजल से भक्तों को रंगा था। लगभग चार से पाँच लाख भक्त उत्सव में आये थे।

ध्यान योग साधना के गूढ़ रहस्यों को समझाते हुए बापूजी ने आत्मा के आनन्द स्वरूप का अनुभव कराते हुए प्रत्यक्ष प्रयोग कराये थे।

गीता में बताए गए कर्मयोग और कर्मों के फल एवं उनकी गति कैसी होती है यह सोदाहरण स्पष्ट करते हुए पूज्य बापू ने कहा कि : ''सत्संग अच्छे कर्मों, सत्य विचारों की प्रेरणा देता है। फलतः सत्संगियों को उच्च गति प्राप्त होती है। **पुरुषःअर्थ इति पुरुषार्थः।** मनुष्यमात्र कर्म करने में स्वतंत्र है। किन्तु फल भोगने में स्वतंत्र नहीं।''

मानव को वासना-इच्छाओं का गुलाम नहीं अपितु स्वामी बनने के लिए पुरुषार्थ करने का अनुरोध किया।

'ऋषि प्रसाद' सेवाधारियों के लिए पुरस्कार-वितरण समारोह

आपको यह सूचित करते हुए हमें अत्यंत आनंद का अनुभव होता है कि 'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता के परिणाम की बहुप्रतीक्षित स्वर्णिम वेला अब निकट आ रही है। यह भव्य पुरस्कार वितरण समारोह भारत वर्ष की राजधानी दिल्ली में ८ अप्रैल २००१ को पूर्णिमा के पावन अवसर पर ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुदेव की कृपापूर्ण एवं आनंददायिनी उपस्थिति में सम्पन्न होगा।

जैसा कि आपको जानकारी है कि इस प्रतियोगिता के अन्तर्गत 'ऋषि प्रसाद' के सभी सन्निष्ठ एवं तत्पर सेवाधारियों को, जिनके ऋषि प्रसाद कार्यालय के कम्प्युटर रिकार्ड के अनुसार ७ अप्रैल २००१ को ३०० या अधिक सदस्य होंगे, उन्हें उनके द्वारा बनाये गये सदस्यों की संख्या के अनुसार पाँच श्रेणियों में पुरस्कृत व सम्मानित किया जायेगा।

अभी भी आपके पास ऊँची श्रेणी में पहुँचने के लिए ७ अप्रैल २००१ तक का समय है। रसीद बुकें ७ अप्रैल २००१ तक दिल्ली में भी जमा की जा सकेंगी।

प्रथम श्रेणी : ११ हजार से ज्यादा सदस्य संख्या
द्वितीय श्रेणी : ५००१ से ११००० तक सदस्य संख्या
तृतीय श्रेणी : १००१ से ५००० तक सदस्य संख्या
चतुर्थ श्रेणी : ५०१ से १००० तक सदस्य संख्या
पंचम श्रेणी : ३०० से ५०० तक सदस्य संख्या

पूज्य बापू के आगामी कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क फोन
३१ मार्च से २ अप्रैल	इंदौर	श्रद्धेय श्री नारायण साँई के सान्निध्य में विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर पूज्य बापू के दर्शन-सत्संग का लाभ भी मिलेगा।	संत श्री आसारामजी आश्रम, खंडवा रोड, बिलावली तालाब के पास।	(०७३१) ४७८०३१, ४६११९८
५ से ७ अप्रैल ८ से १० अप्रैल	दिल्ली	पूज्य बापू, श्रद्धेय श्री नारायण साँई एवं श्री सुरेशानंदजी के सान्निध्य में विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर *सत्संग एवं पूर्णिमा दर्शन*	सी.बी.डी. ग्राउण्ड, कड़कड़डूमा कोर्ट के सामने	(०११) ५७६४१६१, ५७२३३८

पूर्णिमा दर्शन : ८ अप्रैल २००१ दिल्ली में।

द्वापर युग में जमना किनारे, होरी रचाये घनश्याम रे, गोप-गोपियाँ मस्त हुई तब भजन करें आठों याम रे।
आज कलि में तापी किनारे, होली रचे बापू आसाराम रे, गुरु रंग में साधक ऐसे रंगे, गुरुतत्त्व में करें आराम रे॥

सूरत की होली शिविर में साधक ध्यानस्थ हुए ऐसे।
नैमिषारण्य में तपस्या रत हजारों मुनि बैठे हो जैसे॥

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2001. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH.
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2001 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2001 WITHOUT PRE-PAYMENT [illegible] -(C) 232/2001 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.